प्रथम संस्करण [illegible] 2054 / अप्रैल 1997

पुनर्मुद्रण अप्रैल 2005

मूल्य रु. 20/-

ISBN 81-86970-02-09

प्रकाशक

हिन्दू राइटर्स फोरम

[illegible], एम. आई. जी., राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027

पृष्ठ भूमि

ईसाइयत और इस्लाम की स्थापना के बाद से ही उनके प्रचारकों की निगाहें सबसे पहले भारत पर गिरीं क्योंकि ये दोनों ही पंथ राजनीति से प्रेरित हैं। इसके प्रमुख आकर्षण थे – भारत में व्याप्त वैदिक (हिन्दू) धर्म एवं संस्कृति की उनके पंथों से भिन्नता, जीवन सुविधाओं की सुलभता और यहाँ की विशाल एवं अक्षय धन सम्पदा। इस्लाम और ईसाइयत ने भारत में ही नहीं, प्रारम्भ से ही, विश्व के विभिन्न देशों के लोगों पर छल, बल, जादू-टौना, चमत्कार एवं तलवार के द्वारा अपने-अपने मतों का प्रचार-प्रसार किया है। इन दोनों ही पंथों ने अपने सिद्धान्तों की श्रेष्ठता की अपेक्षा लोगों का साम, दाम, दण्ड, भेद द्वारा अधिक धर्मान्तरण किया है क्योंकि वे यहाँ भी अपने-अपने सम्प्रदाय का राज्य स्थापित करना चाहते थे।

केथोलिक चर्च के दावे के अनुसार प्रथम शताब्दी के अन्त में सेन्ट थामस ने मालाबार-केरल में प्रवेश किया और वहाँ ईसाइयत का प्रचार किया। बाद में पुर्तगाली वास्कोडिगामा ने गोवा में डेरा जमाया जिसके साथ तथा बाद में आए पुर्तगाली ईसाई पादरियों के हिन्दूओं के धर्मान्तरण के लिए छल-छिद्र एवं अमानवीय अत्याचारों के काले कारनामे जगत प्रसिद्ध हैं (गोवा इन्क्वीज़ीशन, ए०के० प्रयोलकर)। इसी प्रकार मौहम्मद (570-632) की मृत्यु के बाद अरबी आक्रान्ताओं ने 636 से 671 ई० तक भारत के इस्लामीकरण के लिए आठ हमले किए जो सभी हिन्दू राजाओं द्वारा असफल कर दिए गए। परन्तु 712 से 1739 ई० तक अरबों, तुर्कों, मुगलों आदि इस्लामी आक्रामकों ने भारत पर अनेकों हमले किए और हिन्दुओं के धर्मान्तरण और भारत को इस्लामी राज्य बनाने के भरसक प्रयत्न किए गए। इस काल खंड में लाखों हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया गया, विरोध करने वालों को कत्ल कर दिया गया तथा स्त्रियों व बच्चों को गुलाम बना दिया गया और हजारों मंदिरों को नष्ट या अपवित्र कर दिया गया। मगर हिन्दू राजाओं के प्रबल विरोध के बावजूद, उन्हें छल, बल, विश्वासघात, प्रलोभनों तथा हिन्दुओं का आपस में मिलकर आक्रान्ताओं का विरोध न करने के फलस्वरुप हिन्दुओं को पराजय का मुंह देखना पड़ा जिसके परिणामस्वरुप आज भारत का एक तिहाई भाग दो पूर्ण इस्लामी राज्यों के रूप में विद्यमान है और शेष भारत के भी इस्लामीकरण व ईसाईकरण की प्रक्रिया तेज गति से चालू है (के०एस० लाल – इन्डियन मुस्लिम्स हू आर दे, दी लीगेसी

ऑफ मुस्लिम रुल इन इंडिया)।

यहाँ विचारणीय यह है कि ईसाइयत और इस्लाम ने छल, बल और तलवार से अपने मत का प्रचार-प्रसार क्यों किया? लाखों करोड़ों निरपराधियों को क्यों मारा? विरोधी मतावलम्बियों का जबरन धर्मान्तरण करके उन्हें अपने स्वतंत्र चिन्तन के अधिकारों से क्यों वंचित किया? इन महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर हम इस्लाम व ईसाइयत की उत्पत्ति, स्वरुप, नीतियों एवं कुछ मौलिक मान्यताओं के आधार पर विचार करेंगे और उनका हिन्दू धर्म की दृष्टि से तुलनात्मक विवेचन करेंगे।

> "उनका (मुसलमानों का) संकल्प सम्पूर्ण भारत वासियों को इस्लाम में दीक्षित करना अथवा कम से कम भारत में इस्लामी शासन स्थापित करना है। इसलिए अपने अल्पसंख्यक होने का उनको मलाल है। उन्हें राजकीय वैभव के सपने आते हैं और अल्पसंख्यक होने के कारण सफलता की निराशा से उन्हें लगता है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है . . . . उनका सदा विश्वास रहा है कि वह एक राज्य के अन्दर राज्य है और समाज के अन्दर समाज है। . . . . इसी के कारण वह अपने नागरिक कानून में किसी भी प्रकार के संशोधन का विरोध करते हैं। भारतीय मुसलमानों द्वारा परिवार नियोजन के बहिष्कार का भी यही कारण है। वह इस विचार के पीछे दीवाने हैं कि अपनी संख्या बढ़ा कर किसी प्रकार राजनीतिक सत्ता को हथिया लें।" (हामिद दलवई : "मुस्लिम पालिटिक्स इन सेक्यूलर इंडिया, पृ. 96-97")
>
> "हिन्दू आक्रामकता एक नई घटना है। मुस्लिम आक्रामकता मुसलमान का जन्मजात स्वभाव है। हिन्दू आक्रामकता की तुलना में वह कहीं अधिक पुरातन है। ऐसा नहीं है कि समय के साथ हिन्दू आक्रामकता बढ़ेगी नहीं अथवा मुस्लिम आक्रामकता से भी आगे नहीं निकल जाएगी। किंतु आज की स्थिति यह है कि मुस्लिम आक्रामकता हिन्दू आक्रामकता से बहुत आगे है।" (डॉ. बी. आर. अंबेडकर : पाकिस्तान, पृ. 239)
>
> "मेरा निजी अनुभव भी इसी प्रकार विचार की पुष्टि करता है कि मुसलमान स्वभाव से आक्रामक होता है और हिन्दू कायर . . . ."। (महात्मा गाँधी : यंग इंडिया 1924)
>
> "मुसलमान सदैव आक्रामक कौम रही है। हिन्दू उतना आक्रामक नहीं होता। इसका इलाज है हिन्दू आक्रामक बने। मुसलमान के आक्रामक चरित्र के प्रति हमारे मन में स्वाभाविक आदर है। . . . हिन्दुओं को इससे पाठ सीखना चाहिए . . . . **जो हम सीख चुके हैं। जो अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकते वह सदैव कष्ट भोगते हैं।**" (कर्नल वेजवुड ब्रिटिश पार्लियामेंट में)

1

क्या हिन्दुज़्म एक रिलीजन है?

'यदि रिलीजन से हमारा तात्पर्य एक निश्चित मत और एक निश्चित उपासना पद्धति से है तो यह स्पष्ट है कि हिन्दुज़्म कोई रिलीजन नहीं है' (जीसस क्राइस्ट एण्ड हिन्दू कम्यूनिटी :- जे०एस० स्टाफ्फनगर)। यहाँ ईसाई मिशनरी लेखक ने रिलीजन शब्द का सामान्य अर्थ धर्म लेकर निष्कर्ष निकाला है कि हिन्दुज़्म कोई धर्म नहीं है। ऐसा प्रचार करना कोई नई बात नहीं है। क्योंकि पिछले बारह सौ वर्षों से इस्लामी व ईसाई लेखकों ने हिन्दू धर्म का भ्रामक अर्थ करके इसको मिटा देने का व्यापक अभियान चला रखा है।

भारत में 712 में आक्रान्ता मौहम्मद बिन कासिम के साथ आए मुसलमानों ने फतवा दिया कि हिन्दुज़्म तो कुफ्र है क्योंकि यह अल्लाह के अलावा हजरत मौहम्मद के रसूल में होने में विश्वास नहीं रखता है। अतः यह तो कुरान के अनुसार नष्ट करने योग्य है और वे तभी से हिन्दुज़्म को समाप्त करने में जुट गए। जिहाद के नाम पर बलात् हिन्दुओं का धर्म परिवर्तन और उनके मन्दिर तोड़ने में जुट गए। उन्होंने यह भी जानने की आवश्यकता नहीं समझी कि हिन्दुज़्म कोई रिलीजन है भी अथवा नहीं। उनके लिए तो इतना ही काफी था कि हिन्दू मूर्ति पूजक हैं। अतः उन्हें नष्ट कर देना ही उचित है। जबकि सच्चाई यह है कि इस्लाम भी मूर्ति पूजक है क्योंकि मुसलमान, इस्लाम के आवश्यक अंग हज की पूर्ति के लिये, मक्का में स्थित संगे-अस्वद यानी पवित्र काले पत्थर की मूर्ति की किसी न किसी रूप में पूजा करते हैं तथा सभी इस्लामी देशों में वे मुल्ला मौलवियों और नबियों की दरगाहों को पूजते हैं।

आज से लगभग पांच सौ वर्ष पहले, 1560 में गोवा में आए ईसाइयों की कार्य पद्धति भी मुसलमानों की तरह ही आक्रामक थी। उन्होंने वहाँ एक 'इन्क्वीज़ीशन' या 'रोमन कैथोलिक न्यायालय' स्थापित किया तथा हजारों हिन्दुओं को मार डाला, जला डाला तथा सैंकड़ों मंदिरों को नष्ट कर दिया और अक्सर उनकी जगह पर गिरजाघर बना दिए। (गोवा इन्क्वीज़ीशन, ए०के० प्रियोलकर)। ईसाइयों के अत्याचार का समस्त भारत में व्यापक विरोध हुआ।

मैकाले-मैक्समूलर योजना

पलासी के युद्ध के बाद जब अंग्रजों की सत्ता भारत में जमने लगी तो इन्होंने सोचा कि हिन्दुओं के सीधे धर्मान्तरण का विरोध होगा। अतः अन्य दूरगामी प्रभावकारी प्रयास सोचे गए तथा मैकाले-मैक्समूलर की योजनानुसार हिन्दुज़्म में नैतिक सुधार, स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी और हिन्दू धर्म शास्त्रों का भ्रामक भाष्य कर अथवा प्रत्येक स्तर पर प्रचार आदि कार्यक्रम अपनाए गए। आश्चर्य तो यह है कि यह सब मैक्समूलर को भारत का हितैषी कह कर प्रचारित किया गया, जबकि वास्तव में यह अल्प संस्कृतज्ञ ईसाई मिशनरी हिन्दू धर्म शास्त्रों का सबसे बड़ा छद्मवेशी शत्रु था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने मैक्समूलर को बहुत ऊँची दरों पर वेदों का भ्रामक भाष्य करने के लिये अनुबंधित किया था और मैक्समूलर ने अपनी पत्नी को एक पत्र लिखते हुए इस सत्य को स्वीकारा कि "**वेद उनके (हिन्दुओं) धर्म का मूल है और यह दिखाना कि वह मूल क्या है यही उस धर्म, जो इससे निकला है, को नष्ट करने का एकमात्र तरीका है, जो गत तीन हजार वर्षों से चला आ रहा है**"।(लाईफ एण्ड लेटर्स आफॅ फैड्रिक मैक्समूलर, न्यूयार्क, 1901)

इतना ही नहीं मैक्समूलर ने प्रचारित किया कि हिन्दुज़्म कोई रिलीजन नहीं है। यह तो सम्प्रदायों का समुच्चय है। तत्कालीन ब्रह्मसमाज के नेता प्रताप चन्द्र मजूमदार को लिखे पत्र में उसने कहा "**हालांकि हिन्दू अखबारों और इंग्लैंड की पत्रिकाओं ने मुझे गालियाँ दी हैं लेकिन मैं तुम्हारे इस पत्र द्वारा एक बात बता देना चाहता हूँ कि तुम्हारे अपने सुधारे गए हिन्दुज़्म और अपनाए गए नए धर्म का नाम केवल भौगोलिक अभिव्यक्ति का प्रतीक होगा। रिलीजन की दृष्टि से उस हिन्दुज़्म का अर्थ होगा हिन्दू का रिलीजन या भारत का रिलीजन तथा उसमें भारत में अपनाए जाने वाले सभी विभिन्न रिलीजन शामिल होंगे जैसे दुर्गा पूजा, बौद्ध धर्म, ईस्लाम, जैन धर्म आदि। यह नाम इन सब रिलीजनों के समूह का नाम होगा**" (वही खंड 2 पृ० 397)। मगर क्या कोई मुसलमान हिन्दू रिलीजन की इस भ्रामक परिभाषा को मानेगा? कभी नहीं तथा इस परिभाषा में ईसाइयत को शामिल नहीं किया गया। फिर क्या भारत के बाहर हिन्दू धर्म नहीं है, या नहीं होगा?

मैक्समूलर (1823-1900) के उपरोक्त भ्रामक कथन के बाद सभी ईसाई मिशनरियों ने यही बात कहना प्रारंभ कर दिया और कुछ ईसाई छद्म नामों से हिन्दू सम्प्रदायों के अनुयायी भी हो गए। ऐसे ही एक व्यक्ति ने, जो स्वयं के शैव कहता था, मद्रास के हिन्दुओं को समझाया कि "**हिन्दू जैसे अस्पष्ट नाम की जगह हमें विशिष्ट नामों का प्रयोग करना चाहिए जैसे शैव-हिन्दू, वैष्णव हिन्दू, शाक्त हिन्दू**"। (जी०एस०एस०-स्वामी, अमरीका में जन्मा सन्यासी, इंडि० ऐक्स० 18.2.1981) पहले भी ईटली के एक ईसाई प्रचारक रोबर्ट डी नोबली ने मदुराई के हिन्दुओं को भ्रमित करने के लिए एक नकली ईसा वेद (ईशोपनिषद की तरह) की रचना की थी। ब्रिटिश सरकार ने मैक्समूलर तथा उस जैसे मिशनरियों को हिन्दुज़्म संबंधी भ्रामक साहित्य के प्रचार में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारी सहयोग दिया था। हालांकि अब मैक्समूलर की वेद संबंधी सभी भ्रामक धारणाऐं पूरी तरह अमान्य सिद्ध हो चुकी हैं। मगर ब्रिटिश राज्यकाल से लगातार इस प्रचार ने कि "**हिन्दुज़्म कोई रिलीजन नहीं है**" अपनी जड़ें काफी मजबूत कर ली हैं। दुखद आश्चर्य तो यह है कि हिन्दू लोग जिन विद्वानों को धर्मशास्त्रों का विशेषज्ञ मानते थे, वे भी मिशनरियों की सी भाषा बोलने लगे और कहने लगे कि "**हिन्दुज़्म कोई रिलीजन नहीं है। यह तो एक जीवन पद्धति है**"।

इस नारे के अनेकों समर्थक हो गए और ऐसे लोगों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। गत कुछ वर्षों में इस नारे का प्रभाव इतना अधिक बढ़ा है और ऐसा प्रबल हो गया है कि इस भ्रम को दूर करने का कोई छोटा-मोटा, इक्का-दुक्का प्रयास अपर्याप्त ही होगा। बल्कि इसके लिये तो एक भारी आन्दोलन चलाने की आवश्यकता होगी। यहाँ हम अनेकों उदाहरणों में से केवल कुछ ही को दे रहे हैं जो शायद सच्चे अर्थों में विश्वास करते हों कि हिन्दुज़्म कोई रिलीजन नहीं है।

1. "हिन्दुज़्म एक निश्चित मान्यताओं वाले रिलीजन की अपेक्षा अनेकों पंथों का संग्रह मात्र है"। (हाट इज हिन्दुज़्म? डी०एस० शर्मा, पृ० 10)
2. "हिन्दुज़्म ऐसा कोई रिलीजन बिल्कुल नहीं है जिसकी मान्यताओं को प्रत्येक अनुयायी को मानना आवश्यक हो। यह तो असीम ब्रह्म के प्रति अपनाई गई विभिन्न मान्यताओं का समुच्चय मात्र है"। (कल्चरल हैरिटेज ऑफ इंडिया, भाग-4 पृ० 19, एस०के० चटर्जी, राम कृष्ण मिशन, कलकत्ता)
3. "हिन्दुज़्म गतिशील आन्दोलन है, एक प्रतिज्ञा नहीं है। एक प्रक्रिया है, अन्त नहीं है। एक विकासशील परम्परा है, कोई अन्तिम दैवी प्रादुर्भाव नहीं है।.... हिन्दू शब्द किसी पंथ का पर्याय नहीं है.... हिन्दू धर्म हिन्दुओं के समन्वित चरित्र का प्रतिबिम्बन है। वह सार्वभौम ग्रहणशीलता के विचार पर आधारित है। उसने अपने मूल विचार के व्यापक विकास के साथ ही उसमें

निरन्तर विकास किया है और सभी पंथों से अपने अनुरुप सार-तत्व ग्रहण कर उन्हें आत्मसात् किया है।" (डॉ० एस० राधाकृष्णन – हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, पृ० 129)

4. "हिन्दू रिलीजन हिन्दुओं के समन्वित चरित्र का दिग्दर्शन मात्र है जो एक नहीं विभिन्न प्रकार के लोगों का प्रतीक है। यह सार्वभौमिक संग्रहिता के आदर्श पर आधारित है"। (मौनियर विलियम्स, रिलीजस थौट एण्ड लाइफ इन इंडिया, पृ० 57)

5. अंतर्राष्ट्रीय शब्दकोष वेक्टर तृतीय (नया) में "हिन्दुज़्म का अर्थ है सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों और व्यवहारों का एक ऐसा संपुंजन जो अधिकांशतः भारतीय उपमहाद्वीप में गतिशील रहा है और जाति व्यवस्था जिसका एक लक्षण रहा है। एक ऐसा दृष्टिकोण जो समस्त रुपों तथा सिद्धान्तों को एक सनातन सत्ता तथा सनातन सत्य के ही भिन्न-भिन्न पक्ष और विभूतियों को मानता है तथा जो अहिंसा, कर्म, धर्म, संसार और मोक्ष में श्रद्धा रखता है और कर्म योग, ज्ञानयोग तथा भक्ति योग द्वारा पुनर्जन्मों के चक्र से मुक्ति में श्रद्धा रखता है"।

6. "सिद्धान्ततः हिन्दुज़्म समस्त विश्वासों, श्रद्धा रुपों और उपासना विधियों को समाविष्ट करता है.... इसी कारण हिन्दुज़्म सभ्यता भी है और धार्मिक मतों का एक विराट संपुंजन भी। उसका कोई एक संस्थापक नहीं है"। (एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, 15वां संस्करण)

7. "हिन्दुज़्म एक ऐसा रिलीजन है जिसकी परिभाषा नहीं की जा सकती है"। (भारतीय संस्कृत कोष, पृ० 346)

8. "हिन्दुज़्म को रिलीजन के रुप में उत्पत्ति यूरोपियनों की देन है"। (हैनरीच वॉन स्टीटेन्क्रान टुबिन्जेन यूनीवर्सिटी)।

9. "हिन्दू शब्द किसी रिलीजन या किसी पूजा पद्धति या किसी विशेष समुदाय को व्यक्त नहीं करता है"। (श्री पाटस्कर, विधि मंत्री, जे० सलदानह कृत कनवरजन एण्ड इन्डियन सिविल लॉ पुस्तक से, पृ० 122)

10. "हिन्दू शब्द किसी रिलीजन या सम्प्रदाय के लोगों को व्यक्त नहीं करता है। यह अनीश्वरवादी, गैरपरम्परावादी, एवं ब्राह्मणवाद के विराधियों के लिए भी प्रयुक्त किया गया है। लेकिन फिर भी ये लोग हिन्दू विधि विधान के अर्न्तगत रहते आये हैं"। (प्रिन्सीपल ऑफ हिन्दू लॉ, डी० एफ० मुल्ला पृ० 768)

11. बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रोफेसर गोविन्द दास ने अपनी

पुस्तक हिन्दुज़्म में कहा है "हिन्दुज़्म पूर्णतया एक अनिश्चित मत है"। "यह तो एक मानव विज्ञान की प्रक्रिया का फल है जिसके कारण संयोगवश इसे 'रिलीजन' का नाम दिया गया है"। "यह सर्वमय है। यह सबका आत्मसाती है। सर्व सहिष्णु है, सर्वानुकूल है, सबका पूरक है"। पुनः "हिन्दू वह है जो किसी धारणा का विरोध नहीं करता है या हिन्दू वह है जो कहता है कि वह हिन्दू है और अनेकों धारणाओं व आस्थाओं में से किसी एक को भी स्वीकार कर लेता है और उनका पालन करने लगता हैं जिन्हें कि हिन्दू समझता है"।

12. एडवर्ड डेवीसन सोपर नामक ईसाई मिशनरी ने हिन्दू की परिभाषा इस तरह की है कि "एक मनुष्य (यानी हिन्दू ले.) अपने कर्मानुसार अपनी जाति में पैदा होता है। इस तरह उसकी जाति सामाजिक व्यवस्था में स्थायी हो जाती है। प्रश्न उठता है कि क्या हिन्दुज़्म बिना जाति के हिन्दुज़्म रहेगा तो इसका स्पष्ट उत्तर यही होगा कि नहीं।" (दी फिलॉसफी आफ क्रिश्चियन वर्ल्ड मिशन, पृ० 671)

13. मिशनरी ई०ई० केलेट ने कहा है "जब तक जाति व्यवस्था रहेगी तब तक हिन्दुज्म बना रहेगा" (ए शार्ट हिस्ट्री आफॅ रिलीजन्स पृ० 396) उन्होंने फिर कहा "हिन्दूज्म तो पूर्णतया ब्राह्मणवाद है" (पृ० 397)।

14. "हिन्दुज़्म उतने ही हैं जितने कि हिन्दू हैं।" (क्राईस्ट एज़ कॉमन ग्राउंड, पृ० 5, कैथलीन हीले)

15. इतना ही नहीं, भारतीय संसद में भी हिन्दू की व्याख्या करने की कोशिश की गई है। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरु की उपस्थिति में हिन्दू उत्तराधिकार कानून 30. 1956 स्वीकृत हुआ जिसमें कहा गया "प्रत्येक भारतीय, जो मुस्लिम, ईसाई या पारसी नहीं है, वह हिन्दू है और उस पर हिन्दू कानून व्यवस्था लागू होगी" यह तो बड़ी विचित्र परिभाषा है, जैसे यदि कोई चीज़ काली, नीली, हरी या लाल नहीं है, तो वह सफेद है। इसका यह भी अभिप्राय है कि यदि देश में मुस्लिम, पारसी, ईसाई नहीं है तो हिन्दू भी नहीं होगा और फिर हिन्दू की कोई परिभाषा भी नहीं होगी।

16. इनके अलावा न्यायाधीशों ने भी कानूनी दृष्टि से हिन्दुज़्म की परिभाषा करने की कोशिश की है। न्यायाधीश श्री टी० चन्द्रशेखर मैनन ने कहा "हिन्दुज़्म को, एक जीवन पद्धति होने के कारण, जो अपना लेता है, हिन्दू हो जाता है और उसे हिन्दू मंदिर में प्रवेश करने में कठिनाई नहीं होगी"। लेकिन न्यायाधीश महोदय ने यह स्पष्ट नहीं किया कि आखिर वह जीवन

पद्धति क्या है? वह किन सिद्धान्तों पर आधारित है? तथा उसका मूलस्रोत क्या है? क्या अन्य रिलीजन वालों की कोई विशेष जीवन पद्धति नहीं होती है? निश्चित प्रत्येक रिलीजन की अपनी जीवन पद्धति होती है।

इस संदर्भ में भारत के उच्चतम न्यायालय के दो न्यायाधीशों – श्री गजेन्द्रगडकर के, 1966 में, और श्री ए०एन० रे के, 1977 में किए गए निर्णयों का उल्लेख करना भी उपयोगी होगा। दोनों ने सार रुप से यही माना है कि "हिन्दू शब्द की स्पष्ट व्याख्या करना मुश्किल है।" उन्होंने अपने विचारों के समर्थन में ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका की व्याख्या को उद्धृत किया और कहा कि "हिन्दू शब्द से कोई निश्चित विचार या अवधारणा स्पष्ट नहीं होती है जिसका किसी रिलीजन या मज़हब से संबंध हो"। अन्तिम विवेचना से वे इस बात पर सहमत हुए प्रतीत होते हैं कि "हिन्दुज़्म एक सभ्यता एवं रिलीजनों का संग्रह मात्र ही है..................."

हिन्दुज़्म की एक सुस्पष्ट परिभाषा का प्रत्येक प्रयास असन्तोषजनक ही सिद्ध हुआ है।" (देखें, हमारी दी हिन्दू?)

अभी हाल में (11.12.1995) उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों ने हिन्दू धर्म की मीमांसा करते हुए निर्णय दिया कि "हिन्दुज़्म शब्द का कोई संकीर्ण अर्थ समझना आवश्यक नहीं है। उसे केवल हिन्दू धार्मिक रीतियों तथा व्यवहारों तक सीमित करके भारतीय संस्कृति से असम्बध रुप में देखना भी आवश्यक नहीं है। वह तो भारतीय जनों की जीवनशैली और संस्कृति से सम्बंधित है, न कि किसी हिन्दू पंथ के लोगों के रीति रिवाज मात्र से (पाञ्चजन्य 31.12.1995)।

उपरोक्त उदाहरणों के अलावा अनेकों हिन्दू व अहिन्दू लेखकों एवं धर्मविदों ने ऐसी ही भ्रामक परिभाषाएँ दी है जो वास्तव में कोई परिभाषा नहीं है। एक परिभाषा दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक ही बात की ओर इशारा करती है कि हिन्दुज़्म कोई रिलीजन नहीं है। सभी लेखकों ने अपने ज्ञान धारणा, उद्देश्य और अनुभव के आधार पर जो उचित समझा कहा, मगर किसी ने भी आगे बढ़कर वर्तमान हिन्दू धर्म के पीछे झांककर देखने, समझने एवं निष्पक्ष होकर हिन्दुज़्म के स्वरुप को समझकर उसे परिभाषित करने की कोशिश नहीं की, कि आखिर फिर हिन्दुज़्म है क्या? क्या वे हिन्दुज़्म के सात्विक स्वरुप को समझ नहीं पाए? या फिर उन्होंने जान बूझकर इसका प्रयास नहीं किया या फिर क्या भ्रामक अर्थ किया है?

ब्रिटिश राज्य काल में दो सौ वर्ष तक **'हिन्दुज़्म कोई रिलीजन नहीं है'** के भ्रामक प्रचार का क्या यही अर्थ समझ लिया जाए कि विश्व के प्राचीनतम धर्म के मानने वाले आर्यों, और आज के करीब अस्सी करोड़ हिन्दुओं का कोई धर्म नहीं

था और न है। ऐसे कुप्रचार का एक मात्र उद्देश्य केवल हिन्दू धर्म के प्रति अश्रद्धा, घृणा, सन्देह, एवं हेय भावना पैदा करना रहा है ताकि हिन्दुओं का धर्मान्तरण करके हिन्दुज़्म को समाप्त कर दिया जाए। यह तो ईसाई मिशनरियों एवं वैदिक वाङ्मय से अपरिचित सेकुलरवादियों का एक षडयंत्र मात्र है। मगर हिन्दू धर्म में आस्था रखने वालों की स्पष्ट धारणा है कि हिन्दुज़्म ईसाइयत तथा इस्लाम की तरह, किसी मनुष्य द्वारा स्थापित कट्टरवादी रिलीजन नहीं है क्योंकि हिन्दू धर्म, ईश्वरीय ज्ञान पर आधारित, पक्षपात रहित, मानवतावादी, स्वतन्त्र विचारोन्मुख, प्रगतिशील, मानव कल्याणकारी, सम्पूर्ण मानव धर्म है। अतः हिन्दुज़्म धर्म है, कोई रिलीजन नहीं है क्योंकि अंग्रेजी भाषा का रिलीजन शब्द धर्म शब्द का समानार्थक या पर्यायवाची शब्द नहीं है। दोनों शब्दों के अर्थ, भाव, उत्पत्ति, स्वरुप, व्याख्या एवं व्यवहार में व्यापक मौलिक अन्तर है। एक ओर रिलीजन व्यक्तिवादी, पक्षपाती, कट्टरवादी, सम्प्रदायवादी एवं साम्राज्यवादी आकांक्षाओं से ग्रसित अवधारणा है जबकि धर्म सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सत्य आधारित, शाश्वत् पक्षपातरहित मानवतावादी मूल्यों की अभिव्यक्ति का प्रतीक है। अतः रिलीजन और धर्म की परिभाषा, स्वरुप और उनके पारस्परिक अन्तर को समझना उपयोगी होगा। तभी हम इस्लाम व ईसाइयत की मान्यताओं को हिन्दू धर्म की तुलना में भली प्रकार समझ पाएंगे।

2

रिलीजन क्या है?

'रिलीजन' शब्द की परिभाषा करने के पहले भी अनेकों प्रयास किए गए हैं, और निश्चय ही आगे भविष्य में और भी अधिक किए जाएंगे। फिर भी 'रिलीजन' शब्द की कोई संतोषजनक परिभाषा सम्भव नहीं हो सकी है। प्रत्येक परिभाषा विभिन्न मतों के अनुयायियों के आशानुकूल किसी न किसी प्रकार से अधूरी ही रही हैं और यह भी निश्चित प्रतीत नहीं होता है कि आगे भी रिलीजन की कोई सर्व सम्मत परिभाषा हो ही जाएगी।

पाश्चात्य विचारकों में से कान्ट, फिश्वे, श्लेरमाथे, कोम्टै और फ्यूरबैच आदि का नाम नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने पहले रिलीजन को परिभाषित करने का प्रयास किया था। लेकिन मैक्समूलर ने उपरोक्त सभी दार्शनिकों की परिभाषाओं को अस्वीकार कर दिया एवं 1878 में 'रिलीजन की उत्पत्ति और विकास' विषय पर भाषण देते हुए उन्होंने रिलीजन की परिभाषा इस प्रकार की "रिलीजन मस्तिष्क की एक मूल शक्ति है जो तर्क और अनुभूति के निरपेक्ष अनन्त विभिन्न रूपों एवं स्वरुपों में अनुभव करने की योग्यता प्रदान करती है और यदि हम ध्यानपूर्वक सुनें तो आत्मा की इस आवाज़ को हम सभी धर्मों में सुन सकते हैं जिसमें अचिंत्य व अकल्पनीय को मूर्तरूप देने का सतत् प्रयास स्पन्दित होता है, अनुच्चरणीय को उच्चारण करने की, असीम को चाहने की, और ईश्वर प्रेम की कामना है।"

यहाँ मैक्समूलर ने रिलीजन की परिभाषा देते हुए यह कल्पना की है और माना है कि ईश्वर जैसी कोई सत्ता है, जो असीम है, अनन्त है। अनुच्चरणीय है। इससे प्रतीत होता है कि मैक्समूलर यहाँ आस्तिकवाद की परिभाषा दे रहे हैं और उनकी उपरोक्त परिभाषा नास्तिक एवं अन्य मतों में आस्था रखने वालों के लिए अपर्याप्त होगी। मैक्समूलर की उपरोक्त परिभाषा को सौ वर्ष से भी अधिक हो गए हैं और इस बीच अनेकों वादों, मतों एव धारणाओं का जन्म हो चुका है। उसने कभी कल्पना भी न की होगी कि साम्यवाद भी कभी न केवल एक रिलीजन के रूप में स्वीकार किया जाएगा बल्कि यह विश्व के पंथ समूहों का एक महत्त्वपूर्ण सदस्य होगा,

हालांकि साम्यवाद ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखता है।

दो ही रिलीजन

यथार्थ तो यह है कि आज विश्व में दो ही रिलीजन हैं। एक आस्तिकवाद और दूसरा नास्तिकवाद। आस्तिकवाद ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखता है और नास्तिकवाद, ईश्वर को, चाहे किसी भी नाम से पुकारो, उसके अस्तित्व को पूरी तरह नकारता है। नास्तिकवादी ईश्वर के नाम पर आँसू नहीं बहाते हैं और न ही उनको इस बात का पछतावा ही है। कभी-कभी तो नास्तिक ईश्वर की सत्ता का मजाक भी उड़ाते हैं।

प्रत्येक आस्तिक एक सार्वभौम सत्ता में विश्वास रखता है, जबकि प्रत्येक नास्तिक उपरोक्त धारणा को अस्वीकार करता है और सृष्टि के एक आदि स्रोत की धारणा को ढोंग एवं पाखंड मानता है। इसके विपरीत प्रत्येक आस्तिक इस बात पर बल देता है कि एक सार्वभौम सत्ता को न मानना स्वयं में नास्तिक का पाखंड है। शायद एक निष्पक्ष विचारक को दोनों ही धारणाऐं उचित प्रतीत हों क्योंकि यह व्यक्ति की शैक्षणिक योग्यताओं, तर्क शक्ति और अपने पक्ष को प्रस्तुत करने की क्षमता पर निर्भर करेगा। फिर भी सत्य का दुखद स्वरुप यह है कि जितनी ही प्रामाणिकता के साथ आस्तिक ईश्वर की सार्वभौम सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास करता है, नास्तिक उतनी ही दृढ़ता से उसे असत्य एवं निराधार सिद्ध कर देता है। इस तरह आस्तिक और नास्तिक दोनों ही अपनी अपनी धारणाओं में आस्था बनाए रखते हैं जबकि परम्परावादी कुछ सोचने का कष्ट ही नहीं करते हैं। समय के साथ आस्तिकवाद और नास्तिकवाद दोनों ही रिलीजन अनेकों मतों, पंथों एवं सम्प्रदायों में विभाजित हो गए हैं। लेकिन इन सभी पंथों के अनुयायियों के बीच एक ही मूल समस्या बनी रही है कि ईश्वर है अथवा नहीं है? तथा समय के साथ अन्य क्रिया कलापों, कर्मकाण्डों, विश्वासों, एवं उपासना विधियों में व्यापक अन्तर होते गए हैं।

इनमें से इस्लाम और ईसाइयत दो ऐसे आस्तिकवादी पंथ हैं जिनमें से अनेकों शाखाऐं एव उपशाखाऐं बन गई हैं और जिनमें से प्रत्येक शाखा अपने को असली इस्लाम या असली ईसाइयत मानता है। वैटिकन के पोप की अध्यक्षता में रोमन कैथेलिक अपने को असली ईसाई रिलीजन का दावेदार मानता है, जबकि इसके विरोधी सभी प्रोटेस्टेंट चर्चें रोमन कैथोलिक को अप्रामाणिक मानती हैं। परिमाणस्वरुप आज ईसाइयत की करीब एक सौ बीस से अधिक शाखाऐं हैं।

इसी प्रकार इस्लाम की दो मुख्य शाखाऐं हैं – शिया और सुन्नी, और दोनों ही अपनी अपनी शाखा को सच्चा इस्लाम मानते हैं। यद्यपि दोनों में बुनियादी अन्तर है।

सुन्नी मुसलमान कहते हैं कि 'अल्लाह एक है और हजरत मौहम्मद उसका रसूल है' जबकि शिया कहते हैं कि 'इसके अलावा अली अल्लाह का उप-रसूल है'। आज इस्लाम की 313 शाखाऐं हैं (कुरान परिचय, देवप्रकाश, भाग-1)। इसके अलावा मुसलमानों में अहमदिया वर्ग भी अपने को इस्लाम का अनुयायी मानता है परन्तु मोहम्मद को आखिरी रसूल नहीं मानता है। परिणामस्वरुप कट्टरवादी मुसलमान कादियानी अहमदियाओं को मुसलमान ही नहीं मानता है तथा इस्लामी पाकिस्तान में तो उन पर लगातार अत्याचार हो रहे हैं जबकि भारत में कादियान में उनकी मुख्य केन्द्र है, जहाँ वे फल-फूल रहे हैं। इसके अलावा शिया-सुन्नी के पारस्परिक झगड़े आम बात है। 1980-1982 का, ईरान-ईराक युद्ध इसी मानसिकता का प्रतीक है। ईराक में तो शियाओं के ताजिए भी नहीं निकाले जाते यहाँ करबला में मोहम्मद हसन शहीद हुए थे।

फिर रिलीजन क्या है?

हालांकि अभी भी रिलीजन की कोई संतोषजनक परिभाषा अधूरी है, मगर रिलीजनों के वर्तमान स्वरुपों को देखते हुए अठारहवीं सदी के एक विद्वान व्यक्ति ने रिलीजन को परिभाषित करने की भरसक कोशिश की है और उसकी वह परिभाषा सबसे आगे बाजी मार ले गई है। क्योंकि वह परिभाषा अब तक की सभी परिभाषाओं से उत्तम प्रतीत होती है। उसकी परिभाषा आस्तिक – नास्तिक दोनों मूल-रिलीजनों में भी ठीक बैठती है। यह व्यक्ति था – थामस पेन (1737-1809) जिसने अपनी पुस्तक *'एज ऑफ रीज़न'* में बड़े व्यंगात्मक ढंग से ईसाइयत के सिद्धान्तों की अति तीव्र आलोचना की है। इसने अपने प्रबल तर्कों से एक बार तो सारे ईसाई जगत की जड़ों को ही झकझोर दिया था।

उसने तर्क की एक कसौटी दी जिससे सिद्ध किया जा सके कि ईसाई या कोई अन्य रिलीजन है भी अथवा नहीं। उसने कहा ***"मुझे तो ईसाइयत सम्बन्धी सारी आस्थाऐं एक प्रकार का नास्तिकवाद अथवा एक प्रकार से ईश्वर को धार्मिक स्तर पर नकारना प्रतीत होता है। यह आदि सृष्टा में विश्वास करने के स्थान पर मनुष्य में विश्वास करने की शिक्षा देता है। यह एक प्रकार का मिश्रण है जिसका मुख्य अंश एकत्ववाद तथा कुछ भाग देववाद है। यह नास्तिकवाद के उतने ही पास है जितना कि अंधेरे के पास धुंधला प्रकाश। यह मनुष्य और सृष्टिकर्त्ता के बीच एक पारदर्शी शरीर प्रस्तुत करता है, जिसे यह उद्धारक कहता है जैसे चन्द्रमा का पारदर्शी स्वरुप जब पृथ्वी और सूर्य के बीच आ जाता है तो चन्द्र ग्रहण हो जाता है, वैसे ही यह (ईसाइयत) प्रकाश का धार्मिक या अधार्मिक ग्रहण है"*** (पृ0 39 अनु0 ले0)।

यहाँ 1794 में, पेन के कहे ये वचन ***"यह मनुष्य और सृष्टा के बीच एक पारदर्शी शरीर प्रस्तुत करता है, जिसे यह उद्धारक कहता है"***, महत्त्वपूर्ण हैं। जब कभी भी मनुष्य और सृष्टिकर्त्ता के बीच एक पारदर्शी शरीर (मानव शरीर) दूसरे मनुष्यों के मार्ग दर्शन के लिये किसी नई अवधारणा, व्यवस्था या जीवन पद्धति को बतलाता है, तो वह रिलीजन बन जाता है। यह ईसाइयत के लिये बिल्कुल सत्य है और इसी प्रकार इस्लाम के लिये भी यह उतना ही ठीक है।

ईसाइयत ने मनुष्य और ईश्वर के बीच ज़ीसस को, और इस्लाम ने मौहम्मद को एक पारदर्शी शरीर के रूप में प्रस्तुत किया है और इस प्रकार ये दोनों ही रिलीजन हो गए। इन दोनों में क्राइस्ट और मौहम्मद अनिवार्य हैं। ईसाइयत की यह एक महत्त्वपूर्ण मान्यता है कि ***"जो विश्वास करेगा*** (जीसस ले0) ***और जो बपतिस्मा स्वीकार कर लेगा उसकी रक्षा होगी, लेकिन जो विश्वास नहीं करेगा, उसे धिक्कारा जाएगा"*** (मार्क 16.16)। पुनश्च ***"मैं ही एक मात्र रास्ता हूँ, सच्चाई और जीवन का। कोई भी मनुष्य मेरे बिना परमपिता परमेश्वर तक नहीं पहुँच सकता है।"*** (उत्पत्ति 16.6)। यहाँ जीसस ने स्वयं घोषणा की है कि कोई भी मनुष्य स्वयं सीधा ईश्वर तक नहीं पहुँच सकता है जब तक कि वह पहले स्वयं क्राइस्ट के पास न आए। अतः जीसस स्वयं ईश्वर और मनुष्य के बीच एक पारदर्शी शरीर बनकर खड़ा हो गया है और इस प्रकार ईसाइयत एक रिलीजन हो गई है।

इसी प्रकार इस्लाम भी इससे कोई भिन्न नहीं है। इस्लाम की मूल मान्यता है कि केवल अल्लाह ही पूजने योग्य है और मौहम्मद उसका आखिरी रसूल है या पैगम्बर है यानी किसी मुसलमान को केवल एक ही ईश्वर में ही विश्वास रखना काफ़ी नहीं है, परन्तु उसे मुहम्मद को खुदा का आखिरी रसूल भी मानना अनिवार्य है। इस प्रकार मुहम्मद को खुदा और मनुष्य के बीच एक पारदर्शी शरीर के रूप में लाने के कारण इस्लाम भी रिलीजन हो गया है देखिए कुछ प्रमाण: –

1. 'मुहम्मद बस अल्लाह के रसूल हैं' (कुरान मजीद, 3.144, पृ0 76 रामपुर 1980)।
2. 'हे मोहम्मद, कहो : हे लोगो! निश्चय ही मैं तुम सब की ओर उस अल्लाह का रसूल हूँ . . . . अतः अल्लाह और उसके संदेश वाहक व रसूल पर ईमान लाओ।' (कु0 म0 7.158, पृ0 336)
3. 'अल्लाह और रसूल का पालन करने वाले के लिये जन्नत है' (कु0 म0

4.13-14, पृ0 79)।

4. 'रसूल इसलिए भेजा जाता है कि उसका आज्ञापालन किया जाए'। (कु0 म0 4.46, पृ0 79)।
5. 'रसूल के विरोध करने वाले का ठिकाना 'जहन्नुम' में है' (कु0 म0 4.115, पृ0 78)।
6. 'जो कुछ मौहम्मद सल्ल. पर उतरा उस पर ईमान लाने वालों के लिये शुभ समाचार'' (कु0 म0 47.2, पृ0 84)।
7. मोहम्मद (रसुल्लल्लाहु) ने न कभी कोई किताब पढ़ी, न लिखना पढ़ना सीखा और यह कुरान पेश किया'' (कु0 म0 29.46, 49, पृ0 82)।
8. 'उस किताब का इन्कार करने वालों के लिये 'जहन्नूम' तैयार है'' (कु0 म0 2.24, पृ0 82)।
9. 'इस किताब को मानने वाले वास्तव में आँख वाले और न मानने वाले अंधे हैं (कु0 म0 6.50, पृ0 83)।
10. 'अल्लाह की उतारी हुई किताब का अध्ययन करो और उस पर चलो। इसके सिवा किसी दूसरे के पीछे नहीं चलो' (कु0 म0 7.3, पृ0 83)।

इस प्रकार हजरत मौहम्मद को खुदा और मनुष्य के बीच एक पारदर्शी शरीर के रूप में लाए जाने के कारण इस्लाम भी रिलीजन हो गया। इसी कसौटी से यदि अन्य मतों, पंथों, सम्प्रदायों में भी किसी मसीहा, पैगम्बर या गुरु को पारदर्शी शरीर के समान मनुष्य और ईश्वर के बीच लाया जाता है तो वे सभी मत, पंथ आदि रिलीजन ही समझे जाएंगे। इस प्रकार टामस पेन ने दो सौ वर्ष पहले रिलीजन की उत्पत्ति के विषय में, जो कुछ कहा था वह आज भी पूर्णतया लागू होता है।

इसका कुछ समय पहले इस्लामी दाउदी बोहरा सम्प्रदाय के आध्यात्मिक अध्यक्ष सईदना के भाई अली असगर कलीमुद्दीन ने समर्थन किया है। हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली (10.3.1993) को दिऐ गए वक्तव्य में उन्होंने कहा ''***सैयदना खुदा का प्रतिनिधि है। इक्कीसवें इमाम के अज्ञातवास में जाने के बाद इमामों का प्रतिनिधित्व करने के लिए दाई आए। इस तरह मूल सिद्धान्त यह हुआ केवल ईश्वर के प्रतिनिधि द्वारा ईश्वर में, विश्वास (सीधे नहीं)। प्रौफेट मोहम्मद में पूर्ण शक्ति है। इमामों में पूर्ण शक्ति है और उसके आधार पर सैयदना में पूर्ण शक्ति है। इसका पूर्ण अनुयायी होना आवश्यक है। वह जो कुछ करता है खुदा की आज्ञा से करता है। अतः यदि अनुयायी बनना है तो पूरा विश्वास होना चाहिए क्योंकि दाई (सैयदना) में ईश्वरीय शक्ति है। यह एक एटोर्नी की शक्ति के समान है जो उसे कुछ भी करने का अधिकार देता है। हमारा विश्वास है कि खुदा ने एटोर्नी की शक्ति प्रौफेट को दे रखी है जिसने उसे इमामों को दी और जिसने वह शक्ति दाई को दे दी। अतः वह खुदा की तरह कार्य करता है वह खुदा की तरफ से कार्य करता है***''। (अनु0 ने0)

उपरोक्त विस्तृत विवरण से यह स्पष्ट होता है कि रसूल के ईश्वरीय दूत होने के कारण ईश्वरीय शक्ति थी और उसने मरने के बाद वह शक्ति बाद के इमामों में चली आती है। अतः ईश्वरीय शक्ति एक ईमाम से दूसरे इमाम में व अन्य भौतिक शरीरधारी इमामों, सैयदना आदि के माध्यम से बनी रहती है।

यही बात एक दूसरे मापदण्ड से भी परखी जा सकती है कि क्या कोई आस्तिकवादी, कोई पंथ, रिलीजन बन सकता है अथवा नहीं? इसमें किसी को आपत्ति नहीं होगी कि सृष्टि में जो कुछ है व दिखाई देता है उसे उसी सार्वभौम सत्ता ने बनाया है, जिसे अल्लाह, खुदा, गॉड, ईश्वर, परमात्मा, भगवान आदि किसी भी नाम से पुकारो। अतः यह भी स्पष्ट है कि एक विश्व सत्ता जो कुछ भी व्यवस्था बनाएगी, अपनी सब सन्तानों के लिये एक से ही नियम बनाएगी तथा विभिन्न समुदायों, विभिन्न मतानुयायियों तथा विभिन्न पंथों के लिए विभिन्न नियम नहीं बनाएगी। अतः वे लोग, जो किसी ऐसे मत या रिलीजन में विश्वास रखते हैं, जो उन्हें अन्यों से दूसरे सम्प्रदायों या वर्गों के लोगों से अपने को श्रेष्ठ मानते हैं, वे किसी एक विशेष रिलीजन के ही अनुयायी होंगे। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है। कि – ***आस्तिकवादियों के लिए रिलीजन वह जीवन पद्धति है जिसमें मनुष्य और ईश्वर के बीच कोई एक पारदर्शी मानव शरीर परमावश्यक हो तथा जिसके वचन, कर्म और नेतृत्व में उसके अनुयायियों को पूर्ण आस्था हो।*** मगर सच्चाई यह है कि ईसाइयत और इस्लाम भी आज उस रूप में नही रह गए हैं जैसा कि जीसस क्राइस्ट एवं हजरत मौहम्मद की मूल धारणा थी। उनमें भी अनेकों सुधार एवं परिवर्तन हो गऐ हैं और समय के साथ और अधिक होंगे। इसीलिए इन रिलीजनों की अनेकों परस्पर विरोधी शाखायें तक बन गई हैं। इस्लाम के कई सम्प्रदाय मौहम्मद साहब को आखिरी नबी नहीं मानते हैं तथा ईसाइयों में भी कई सम्प्रदाय जैसे – क्राइस्टलैस क्रिश्चियन, जीसस को दैव दूत नहीं मानते हैं। इस प्रकार ईसाइयत और इस्लाम रिलीजन हैं, धर्म नहीं है।

इसके विपरीत हिन्दुज़्म रिलीजन नहीं है क्योंकि हिन्दुज़्म में मनुष्य और ईश्वर के बीच किसी पारदर्शी मानव शरीर को मान्यता नहीं है। प्रत्येक हिन्दू को ईश्वर से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने की खुली छूट है। कोई दीवार नहीं, कोई दलाल या

मध्यस्थ नहीं है। अतः थामस पैन की परिभाषा के अनुसार हिन्दुज़्म रिलीजन नहीं है जैसा कि पहले कहा व माना गया है।

रिलीजन की उत्पत्ति

विश्व के सभी आस्तिक या नास्तिक रिलीजन किसी न किसी व्यक्ति द्वारा चलाए गए हैं जिन्होंने उस समय के समस्त लोगों की जिन्दगी में सुधार लाने के उद्देश्य से कुछ बातें कहीं और उनसे इन्हें अपनाने पर बल दिया। कुछ ने अपना संदेश ईश्वर के नाम पर दिया और बलपूर्वक कहा कि वह ईश्वर का दूत है, सन्देश वाहक या प्रतिनिधि है। अतः उसका वचन ईश्वरीय वचन है। ऐसे पैगम्बर, रसूल, मसीहा आदि ने इस बात पर भी बल दिया कि उनके अनुयायियों का लौकिक व पारलौकिक सुख और कल्याण इसी में है कि वे उनके वचनों का दैनिक व्यवहार में लाकर अक्षरशः पालन करें। इन्होंने यह भी कहा कि केवल उनका ही रिलीजन सच्चा है अन्य किसी का नहीं। सीधे-सादे लोगों ने इच्छा से चमत्कारों या भये से अथवा विवशता से, उन्हें अपना 'उद्धारक' मान लिया और लोग इसके अनुयायी होते गए। इस प्रकार रिलीजन की उत्पत्ति हो गई।

जब कोई रिलीजन किसी व्यक्ति के आधार पर विकसित होता है तो व्यक्ति पूजा, साम्प्रदायिक कट्टरता एवं धर्मान्धता पैदा हो ही जाती है। इस्लाम व ईसाइयत ऐसे ही कट्टरवादी रिलीजन हैं जिनकी कट्टरता के कारण योरोप, अफ्रीका, भारत व अन्य देशों में उनके मतों को न मानने वालों पर हुए अत्याचारों का इतिहास सर्वविदित है। आज भी इस्लामी आतंकवाद विश्वव्यापी है। यह सब रिलीजनवाद की देन है। सच्चे धर्म में तो मानव-मानव से घृणा, हिंसा एवं आपस में मारकाट के समर्थन होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तो फिर धर्म क्या है?

3

धर्म क्या है?

धर्म की परिभाषा

धर्म क्या है? यह एक पेचीदा प्रश्न अवश्य है। परन्तु हिन्दू धर्म की दृष्टि से धर्म शब्द के वास्तविक स्वरुप को समझने के लिए एक पक्षपात रहित पूर्वाग्रहों से मुक्त, स्वतन्त्र चिन्तन की आवश्यकता है। मगर इतना अवश्य है कि '**धर्म**' शब्द अंग्रेजी भाषा के '**रिलीजन**' शब्द का पर्यायवाची नहीं है। दोनों शब्दों के अर्थ, उत्पत्ति, स्वरुप एवं व्यवहार में व्यापक एवं मौलिक अन्तर है। धर्म शब्द में जो व्यापकता, शाश्वतता, सार्वभौमिकता, निष्पक्षता, स्वविवेकानुसार कृतिन्त्वता, परिस्थिति अनुसार कर्तव्यपरायणता, व्यवहार और आचरण में सत्यता समाविष्ट है, वह रिलीजन शब्द में नहीं है। रिलीजन शब्द किसी न किसी सम्प्रदाय और अथवा व्यक्ति से जुड़ा होने के कारण संकुचित और उसी के स्वरुप का होकर रह गया है जो समय के साथ और भी विकृत होता रहता है। रिलीजन शब्द की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। वह किसी न किसी सम्प्रदाय या पंथ-विशेष का विशेषण मात्र बन कर रह गया है। माना कि रिलीजन भी व्यक्ति के विकास के लिए है परन्तु सही अर्थों में रिलीजन में उसके अनुयायियों को अपने स्वतन्त्र चिन्तन की आज्ञा नहीं है चाहे उस रिलीजन में कितनी ही विकृतियों, विसंगतियों, अमानवीय प्रवृत्तियों एवं कुरीतियों का समावेश क्यों न हो गया हो? चाहे वह आज के वैज्ञानिक युग में कितना ही असंगत क्यों न हो गया हो?

हिन्दू धर्म शास्त्रों में धर्म जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर गम्भीरता से चिन्तन-मनन किया गया है और उसी के आधार पर धर्म शब्द की व्याख्या की गई है जो स्वतः धर्म शब्द की उत्पत्ति से सम्बन्धित है। धर्म शब्द संस्कृत के 'धृ' धातु से सिद्ध होता है जिसका अर्थ है धारण करना, अपनाना, ग्रहण करना आदि। अतः किसी पदार्थ का मूल गुण, धारण-शक्ति तथा जिससे उसका अस्तित्त्व प्रगट होता है, वह उसका धर्म है, जैसे अग्नि का गुण या धर्म गर्मी, या ताप बढ़ाना, बर्फ का गुण शीतलता देना,

सूर्य का गुण प्रकाश व गर्मी देना, और निर्जीव वस्तुओं का गुण, भार, आकार एवं निष्क्रियता है।

मगर यहाँ हमारा धर्म से तात्पर्य क्रियाशील मानव मात्र के धर्म से है। अतः मानव के विषय में धर्म का भाव होगा-मानवता को धारण करना, मानव के धारण योग्य, अथवा जिससे मानवता धारण की जा सके। यही बात ऋग्वेद (1.22.18) में **'अतो धर्माणि धारयन्'** और महाभारत में, **धारणाद् धर्ममित्याहु**। (संक्षिप्त म. भा. शां. 31.7) द्वारा कही गई है। महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन (1.1) में (**यतोऽमभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धि स धर्मः**) द्वारा धर्म की बड़ी सरल, व्यापक एवं व्यवहारिक व्याख्या दी है। तदनुसार "धर्म मनुष्य के वे धारण योग्य आधार, नियम व कर्त्तव्य हैं जिससे वह लौकिक सुखों को भोगे एवं मृत्यु उपरान्त पारलौकिक सद्गति-मोक्ष को प्राप्त करे।" मगर "ये आचार एवं कर्त्तव्य सत्य, शाश्वत नियमों के आधार पर निष्पक्ष एवं तर्क संगत हों" (मनु. 12.106)।

आर्षं धर्मोपदेशं च वेद शास्त्रऽविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधते सः धर्मं वेद नेतरः।। (मनु. 12.106)

परन्तु "धर्म के वास्तविक तत्त्व को जानने के अभिलाषी मनुष्य को प्रत्यक्ष, प्रमाण, अनुमान, प्रमाण और वेद एवं विविध वेद मूलक शास्त्र प्रमाण आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए" (मनु. 12.105) क्योंकि "धर्म-अधर्म का ज्ञान वेद से ही होता है और वही प्रामाणिक है।"

प्रत्यक्षं चानुभानं च शास्त्रं च विविधागमय्।
त्रयं सुविदितं कार्यं धूर्म शुद्धिमभिप्सता।। (मनु. 12.105)

"धर्म जिज्ञासमनानाम् प्रमाणं परमं श्रुतिः" (मनु. 1.132) पुनः पूर्व मीमांसा (1. 12) (**चोदना लक्षणोऽर्थों धर्मः**) के अनुसार 'इन समस्त सत्य-असत्य कर्म धर्म-अधर्म तथा कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का बोध वेदों यानी ज्ञान से ही होता है' क्योंकि हिन्दुओं का विश्वास है कि "अपौरुषेय वेद ही धर्म का आधार हैं"। **वेदोऽखिलो धर्म मूलम्** (मनु. 2.6)

इसके अलावा मनु ने आस्तिक एवं नास्तिक सभी प्रकार के मनुष्यों के लिए धर्म के चार आधार और बतलाए हैं। वे हैं- "वेद यानी ज्ञान, देश, काल एवं परिस्थिति में ज्ञान के अनुकूल कर्म तथा परम्परा व सदाचार एवं व्यक्ति को अपनी आत्मा को प्रिय लगने वाला व्यवहार या स्वतन्त्र चिन्तन यानी ऐसा व्यवहार जो व्यक्ति स्वयं दूसरों से अपने लिये चाहे।" (मनु. 1.131)

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।। (मनु. 1.131)

अतः मनुष्य को अपना धर्म पालन करने के लिऐ पहले उस विषय को जानना, फिर मानना, तदोपरान्त आत्मप्रेरणा एवं स्वतन्त्र चिन्तन के अनुसार व्यवहार करना या धारण करना आवश्यक है। वर्तमान में यही सेक्यूलरवाद है जिसे यहाँ स्वतन्त्र चिन्तन कहा गया है।

यदि मनुष्य किसी बात को जानने व मानने पर भी व्यवहार में नहीं लाता है या उसे धारण नहीं करता है तो वह धर्म की मूल भावना की पूर्त्ति नहीं करता है क्योंकि धर्म धारण करने की ही वस्तु है, जाँच परख कर अपनाने की चीज़ है और मनुष्य द्वारा धारण करने योग्य होने के कारण ही उसका नाम धर्म या मानव धर्म है। कोरे ज्ञान का नाम धर्म नहीं है। अज्ञानता व हठता का नाम भी धर्म नहीं है, बल्कि तर्क, प्रमाण, सत्य, निष्पक्षता और आत्म विवेक पर आधारित सात्विक कर्म व आचरण का नाम धर्म है। मानव धर्म, मनुष्य के स्वभाव व कर्म से सम्बन्धित होने के कारण यह सार्वदेशिक, सार्वकालिक एवं विश्वभर के मनुष्यों के लिये एक समान होता है। अतः यह किसी विशेष परिस्थिति में, किसी व्यक्ति, पंडित, मौलवी, मसीहा की कल्पना या वचनों पर आधारित नहीं होना चाहिए। क्योंकि धर्म तो प्रत्येक मनुष्य का व्यक्तिगत और स्वविवेकपूर्ण निर्णय एवं कृतित्व होता है। इसमें किसी अन्य व्यक्ति का आदेश या हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

महर्षि मनु ने सबसे पहले धर्म के स्वरुप की अत्यन्त विशद, व्यापक एवं सर्वमान्य व्याख्या की है। इसीलिये मनुस्मृति का हिन्दू शास्त्रों में ही नहीं बल्कि विश्वभर के समाज शास्त्रियों में उच्च स्थान है। मगर आज मनु स्मृति के उपलब्ध संस्करणों में छप्पन प्रतिशत बाहरी मिलावट है जो कि मनु की मूल मान्यताओं के सर्वथा विरुद्ध है। (विशुद्ध मनुस्मृति-सुरेन्द्र कुमार, पृ. 7) इसी मिलावट के कारण लगभग दो सौ वर्षों से ईसाई मिशनरियों ने मनुस्मृति के भ्रामक अर्थ करके हिन्दू धर्म को निन्दित करने का लगातार प्रयास किया है।

धर्म कर्म सम्बन्ध

मनुष्य अपने प्रत्येक धर्म का पालन कर्म द्वारा करता है क्योंकि कर्म ही धर्म पालन का साधन है, माध्यम है। इस तरह धर्म-कर्म दोनों का पारस्परिक धना सम्बन्ध है। गीता (4.17) के अनुसार कर्म तीन प्रकार का होता है कर्म, अकर्म, और विकर्म। एक विशेष परिस्थिति में स्वविवेकानुसार हितकारी कार्य कर्म है, तथा परिस्थिति के अनुसार उचित कार्य न करना अकर्म है और द्वेष भावना से किया गया कर्म विकर्म या कुकर्म है। इनमें से सत्य आधारित, कल्याणकारी, विवेकपूर्ण एवं पक्षपात रहित

सुकर्म धर्म है और इसके विपरीत जानबूझकर, स्वार्थवश, पक्षपात, अन्यायपूर्ण और अहितकारी कार्य विकर्म या अधर्म है। इसमें भी जब कर्म के फल का प्रभाव केवल कर्ता तक ही सीमित हो तो इसे व्यक्तिगत कर्म कहना उचित होगा और यदि व्यक्ति के कर्म का प्रभाव कर्ता के अलावा समाज के अन्य लोगों पर भी पड़े तो उसे सामाजिक कर्म कहेंगे। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के धर्म या अधर्म व्यक्तिगत और सामाजिक दो प्रकार के हो सकते हैं।

धर्म के लक्षण

मनु ने मानव धर्म को व्यापक रूप से दस लक्षणों में व्यक्त किया है जैसे:–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।। (मनु 6.92)

1. **धृति** – सदा धैर्य रखना।
2. **क्षमा** – मान अपमान में सहनशील रहना।
3. **दम** – मन को अधर्म से रोककर धर्म में लगाना।
4. **अस्तेय** – बिना आज्ञा तथा छल कपट विश्वासघात आदि द्वारा दूसरे की वस्तु को ग्रहण नहीं करना।
5. **शौच** – मन और शरीर की पवित्रता बनाए रखना तथा रागद्वेष, व्यसन, पक्षपात, असत्य, आदि दुर्गुणों को छोड़ना।
6. **धीः** – बुद्धि का ज्ञान, विज्ञान की प्राप्ति द्वारा विकास करना।
7. **इन्द्रिय निग्रहः** – ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों को अशुभ कर्मों से हटाकर शुभ कर्मों में लगाना।
8. **विद्या** – सभी प्रकार के सद् ज्ञान-विज्ञान को शिक्षा व मनन द्वारा ग्रहण एवं विकसित करना।
9. **सत्य** – जो पदार्थ व कथन जैसा है वैसा ही बोलना, समझना, मानना, कहना और करना और
10. **अक्रोध** – क्रोध को रोकना तथा क्रोध के वशीभूत न होना।

ये मानव मात्र के स्वाभाविक धर्म है जिन पर किसी पंथ या संप्रदायों के मनुष्यों को आपत्ति नहीं हो सकती है। मनुष्य में मनुष्यत्व का विकास इन्हीं मानसिक एवं आध्यात्मिक गुणों से होता है। धर्म के उपरोक्त लक्षणों में व्यक्तिगत एवं

सामाजिक दोनों प्रकार के धर्म का समावेश है। इन लक्षणों को धारण करने से मनुष्य पहले तो अपना व्यक्तिगत सर्वांगीण विकास कर सकता है और फिर इन गुणों के आधार पर मनुष्य अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक धर्म का सर्वोत्तम पालन कर सकता है। अतः ये गुण व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक धर्म पालन करने के मार्गदर्शक सिद्धान्त हैं। ये लक्षण धर्म की धुरी है, मानव धर्म की कुंजी हैं। धर्म के इन लक्षणों को अपनाना विश्व के सभी स्त्री, पुरुषों के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिये अत्यन्त उपयोगी ही नहीं अपरिहार्य है तथा ये सर्वांगीण विकास की सीढ़ियाँ हैं। ये मानवता के अनिवार्य अंग हैं।

ये मनुष्य मात्र के मौलिक सात्त्विक गुण किसी पंथ, सम्प्रदाय, रिलीजन, विशेष विचारधारा या व्यक्ति आदि किसी के भी विरोधी नहीं है। ये तो सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सार्वदेशिक, गोरे, काले व सभी नस्लों के मनुष्यों के धर्म के मूलभूत अंग हैं। इसीलिये मनु ने इन दस लक्षणों को सनातन धर्म की संज्ञा दी है यानी प्रत्येक मनुष्य को हर परिस्थिति में इन गुणों को धारण करना ही चाहिये, क्योंकि ये गुण मानव मात्र के धारण करने योग्य हैं। ये ही गुण मानवता का एवं मानव धर्म का तथा मानवीय जीवन मूल्यों का आधार हैं। ये मनुष्यत्व के प्रतीक हैं, मानवता के द्योतक हैं।

इन गुणों के विकास से स्वतन्त्र चिन्तन एवं आत्मविवेक द्वारा निर्णय लेने की अद्भुत शक्ति और प्रेरणा मिलती है। इसलिये इनके विकास में किसी बाहरी व्यक्ति, पंडित, मुल्ला, मौलवी और मसीहा के आज्ञा पालन की अनिवार्यता या हस्तक्षेप नहीं है क्योंकि मानव धर्म व्यक्तिवादी है। वह उसके सर्वांगीण विकास की प्रेरणा देता है। इसीलिये हिन्दू धर्म रिलीजन नहीं है। एक सम्पूर्ण धर्म है, मानव धर्म है। मनु के इन दस लक्षणों को यदि मानव धर्म के दस स्तम्भ कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा, क्योंकि मानवता आज भी इन्हीं गुणों पर आधारित है। भले ही इनके मानने वाले हिन्दू हो या न हों। वे चाहे अपने को किसी भी रिलीजन का क्यों न कहे। वे चाहे आस्तिक हों या नास्तिक हों। इसीलिए महाभारत में इसे नित्य धर्म कहा है (**नित्योधर्मः** (उद्योग. 40.13))।

धर्म का स्वरुप

उपरोक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि धर्म का अर्थ या स्वरुप जैसा कि हिन्दू मानता है वह यह है कि "**धर्म ईश्वर प्रदत्त वह शाश्वत ज्ञान एवं कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का मार्गदर्शक विधान है जो आस्तिक, नास्तिक सभी**

मनुष्यों के विकास व कल्याण के लिये है। यह एक समतावादी, ममतावादी सार्वभौमिक, सार्वकालिक, सत्य स्वरुप आत्मविवेक-आधारित, पक्षपात रहित तथा तर्कसंगत दर्शन है जो रंग-भेद, नस्लभेद, लिंगभेद, भाषा-भेद, एवं राजनैतिक चिन्तनों की सीमाओं से परे है। यह लौकिक एवं पारलौकिक जीवन का सर्वोत्तम मार्ग है। इसके लिये सृष्टिकर्त्ता और मनुष्य के बीच किसी पारदर्शी शरीर, मध्यस्थ मुल्ला, मौलवी, मसीह, पंडित आदि की जरुरत नहीं है। यह मतमतान्तरों के पारस्परिक रागद्वेष, घृणा एवं व्यक्ति निष्ठा व कट्टरपन से भी मुक्त है। यह स्वतन्त्र चिन्तनोन्मुखी, ज्ञान विज्ञान प्रेरक व सत्य निष्ठ कर्त्तव्य पालन की आचार संहिता है''।

हम यहाँ संक्षेप में धर्म की परिभाषा युग दृष्टा महर्षि दयानन्द के उस कथन के साथ समाप्त करना चाहते हैं जिसे ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर मोनियर विलियम्स ने अपनी पुस्तक ब्राह्मणिज्म एण्ड हिन्दुज्म की भूमिका में लिखा है कि ''मैं दयानन्द सरस्वती से 1876 में बम्बई में मिला और उनसे धर्म की परिभाषा पूछी। वे बोले ***धर्म एक सत्य और न्यायाधारित अवधारणा है। यह पूर्वाग्रहों से मुक्त एवं पक्षपातरहित सत्याधारित व्यवहार है जिसमें तर्क और ईश्वर प्रदत्त ज्ञान का सामंजस्य हो***''। धर्म की यह परिभाषा ईसाइयत व इस्लाम रिलीजन में लागू नहीं हो सकती है, क्योंकि वे पूर्वाग्रह एवं पक्षपात से मुक्त नहीं हैं।

4

रिलीजन और धर्म का स्वरुप

यह सुनिश्चित है कि किसी भी रिलीजन का स्वरुप व व्यवहार उसके संस्थापक के उद्देश्य, शिक्षा, संस्कार, मानसिकता तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इस्लाम व ईसाइयत के संस्थापकों ने तत्कालीन परिस्थितियों में वहाँ के लोगों का जीवन सुधारने के उद्देश्य से एक आन्दोलन प्रारम्भ किया था जिसे वहाँ के लोगों ने भय, विवशता अथवा स्वेच्छा से स्वीकारा। इन संस्थापकों ने अपनी कूटनीतियों एवं तलवार के ज़ोर से आसपास के लोगों पर इसे थोपने का प्रयास किया। इस्लाम का खुदा कहता है ''ओ हे पैगम्बर! हमने इस कुरान को इस वजह से उतारा है कि तुम मक्कावालों को और जो लोग उसके आसपास रहते हैं, उनकों डराओं (कु. म. 6.93, 20.113 आदि)। इस्लामी लेखक अनवर शेख ने भी इसे **अरब राष्ट्रवाद का आन्दोलन कहा** (*इस्लाम-दी अरब नेशनल मूवमेंट*) जिसे विश्व के अन्य भागों पर तलवार द्वारा थोपा गया।

इस्लामी रिलीजन का स्वरुप

इस्लाम और ईसाइयत दोनो रिलीजन हैं। इनमें से कोई भी धर्म नहीं है। अनेकों विद्वानों ने इस्लाम के स्वरुप की, जैसा कि कुरान एवं हदीस में कहा गया है, व्याख्या की है। इनमें से एक कोलिन मेन ने अपनी पुस्तक *दी डेड ऐण्ड ऑफ इस्लाम* (ट्रूथ सीकर पत्रिका, मार्च-अप्रैल 1992) में कहा है कि ''**इस्लाम विश्व का सबसे आक्रामक रिलीजन है। यह अप्रजातन्त्रीय, कट्टरवादी एवं पशुओं के लिए क्रूर है, यह अन्य रिलीजनों के प्रति असहिष्णु है। यह बुद्धि असंगत है। यह कला को प्रतिबन्धित करता है, इस्लाम गैर-मुसलमानों को काफिर कहता है, और उनके साथ कठोरता, यहाँ तक कि उन्हें मारने तक का आदेश देता है जिसे जिहाद या धर्म युद्ध की संज्ञा देते हैं**''। कुरान खुद इस पक्षपात और काफिरों के कत्ल का समर्थन करती है जो नीचे के उद्धरणों से सुस्पष्ट है :-

1. ''फिर, जब हराम के महीने बीत जाऐ, तो 'मुश्रिको' को जहाँ-कहीं पाओ क़त्ल करो, और पकड़ो, और उन्हें घेरो, और हर घात की जगह उनकी ताक में बैठो। फिर यदि वे 'तौबा' कर लें नमाज़ क़ायम करें और, जकात दें, तो उनका मार्ग छोड़ दो। निःसन्देह अल्लाह बड़ा क्षमाशील और दया करने वाला है।'' (10.9.5)
2. ''हे 'ईमान' लाने वालो! 'मुश्रिक' (मूर्तिपूजक) नापाक है।'' (10.9.28)
3. ''निःसन्देह 'काफ़िर' तुम्हारे खुले दुश्मन हैं।'' (5.4.101)
4. ''है 'ईमान' लाने वालो! (मुसलमानो) उन 'काफ़िरों' से लड़ो जो तुम्हारे आस पास है, और चाहिये कि वे तुम में सख्ती पाये।'' (11.9.123)
5. ''जिन लोगों ने हमारी ''आयतों' का इन्कार किया, उन्हें हम जल्द अग्नि में झोंक देंगे। जब उनकी खाले पक जाएंगी तो हम उन्हें दूसरी खालों से बदल देंगे ताकि व यातना का रसास्वादन करलें। निःसन्देह अल्लाह प्रभुत्वशाली तत्त्वदर्शी है।'' (5.5.56)
6. ''है 'ईमान' लाने वालो! (मुसलमानों) अपने बापों और भाईयों को अपना मित्र मत बनाओ यदि वे 'ईमान' की अपेक्षा 'कुफ़्र' का पसन्द करें। और तुम में से जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा, तो ऐसे ही लोग ज़ालिम होंगे।'' (10.9.23)
7. ''अल्लाह 'काफ़िर' लोगों को मार्ग नहीं दिखाता।'' (10.9.37)
8. ''हे 'ईमान लाने वालो! . . . और 'काफ़िरों' को अपना मित्र मत बनाओ। अल्लाह से डरते रहो यदि तुम 'ईमान' वाले हो।'' (6.5.57)
9. ''फिटकारे हुए, (गैर मुस्लिम) जहां कहीं पाए जाऐंगे पकड़े जाएंगे और बुरी तरह क़त्ल किए जाएंगे।'' (22.33.61)
10. ''(कहा जाऐगा): निश्चय ही तुम और वह जिसे तुम अल्लाह के सिवा पूजते थे 'जहन्नम' का ईधन हो। तुम अवश्य उसके घाट उतरोगे।'' (17. 21.98)
11. ''और उस से बढ़कर ज़ालिम कौन होगा जिसे उसके 'रब' की 'आयतों' के द्वारा चेताया जाये, और फिर वह उनसे मुँह फ़ेर ले। निश्चय ही हमें ऐसे अपराधियों से बदला लेना है।'' (21.32.22)

12 ''अल्लाह ने तुमसे बहुत सी 'गनीमतों' (लूट) का वादा किया है जो तुम्हारे हाथ आयेगी,'' (26.48.20)

13. ''तो जो कुछ 'गनीमत' (लूट) का माल तुमने हासिल किया है उसे 'हलाल' व पाक समझ कर खाओ,'' (10.8.69)

14. ''हे नबी! 'काफ़िरो' और 'मुनाफ़िकों' के साथ जिहाद करो, और उनपर सख्ती करो और उनका ठिकाना 'जहन्नम' है, और बुरी जगह है जहां पहुंचे।'' (28.66.9)
15. ''तो अवश्य हम 'कुफ़्र' करने वालों को यातना का मज़ा चखायेंगे, और अवश्य ही हम उन्हें सबसे बुरा बदला देंगे उस कर्म का जो वे करते थे।'' (24.41.27)
16. ''यह बदला है अल्लाह के शत्रुओं का: ('जहन्नम' की) आग। इसी में उनका सदा घर है, इसके बदले में कि हमारी 'आयतों' का इन्कार करते थे।'' (24.41.28)
17. ''निस्सन्देह अल्लाह ने 'ईमान' वालों (मुसलमानों) से उनके प्राणों और उनके मालों को इसके बदले में ख़रीद लिया है कि उनके लिए 'जन्नत' है: वे अल्लाह के मार्ग में लड़ते हैं तो मारते भी हैं और मारे भी जाते हैं।'' (11.9.111)
18. ''अल्लाह ने इन 'मुनाफ़िक' (अर्ध मुस्लिम) पुरुषों और मुनाफ़िकों स्त्रियों और 'काफ़िरों' से 'जहन्नुम' की आग का वादा किया है जिसमें वे सदा रहेंगे। यही उन्हें बस है। अल्लाह ने उन्हें लानत की और उनके लिए स्थायी यातना है।'' (10.9.68)
19. ''हे नबी! 'ईमान' वालों (मुसलमानों) को लड़ाई पर उभारो। यदि तुम में 20 जमे रहने वाले होंगे तो वे 200 पर प्रभुत्व प्राप्त करेंगे, और यदि तुम में 100 हों तो 1000 'काफ़िरों' पर भारी रहेंगे, क्योंकि वे ऐसे लोग हैं जो समझ बूझ नहीं रखते।'' (10.8.65)
20. ''हे 'ईमान' लाने वालो (मुसलमानों) तुम 'यहूदियों' और 'ईसाइयों' को मित्र न बनाओ। ये आपस में एक दूसरे के मित्र हैं। और जो कोई तुम में से उनको मित्र बनायेगा, वह उन्हीं में से होगा। निस्सन्देह अल्लाह जुल्म करने वालों को मार्ग नहीं दिखाता।'' (6.5.51)
21. '' 'किताब वाले' जो न अल्लाह पर 'ईमान' लाते हैं न अन्तिम दिन पर, न उसे 'हराम' करते हैं जिसे अल्लाह और उसके 'रसूल' ने हराम ठहराया है, और न सच्चे 'दीन' को अपना 'दीन' बनाते हैं, उनसे लड़ो यहां तक कि वे अप्रतिष्ठित (अपमानित) होकर अपने हाथों से 'जिज़या' देने लगें।'' (10.9.29)
22. ''. . . फिर हमने उनके बीच 'क़ियामत' के दिन तक के लिये वैमनस्य और द्वेष की आग भड़का दी, और अल्लाह जल्द उन्हें बता देगा जो कुछ वे

करते रहे हैं।'' (6.5.14)

23. "वे चाहते हैं कि जिस तरह से वे 'काफ़िर' हुए हैं उसी तरह से तुम भी 'काफ़िर' हो जाओ, फिर तुम एक जैसे हो जाओ: तो उनमें से किसी को अपना साथी ना बनाना जब तक वे अल्लाह की राह में हिजरत न करें, और यदि वे इससे फिर जावें तो उन्हें जहां कहीं पाओ पकड़ो और उनका (कत्ल) वध करो। और उनमें से किसी को साथी और सहायक मत बनाना।'' (5.4.89)

24. "उन (काफ़िरों) से लड़ो! अल्लाह तुम्हारे हाथों उन्हें यातना देगा, और उन्हें रुसवा करेगा और उनके मुकाबले में तुम्हारी सहायता करेगा, और 'ईमान' वालों के दिल ठंडे करेगा।'' (10.9.14)

उपरोक्त आयतों से स्पष्ट है कि इनमें ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, कपट, लड़ाई-झगड़ा, लूटमार और हत्या करने के आदेश मिलते हैं। इन्हीं कारणों से देश व विश्व में मुस्लिमों व गैर मुस्लिमों के बीच दंगे हुआ करते हैं।

दिल्ली प्रशासन ने सन् 1985 में सर्वश्री इन्द्रसेन शर्मा और राजकुमार आर्य के विरुद्ध दिल्ली के मैट्रोपोलिटन मैजिस्ट्रेट की अदालत में, उक्त पत्रक छापने के आरोप में मुकदमा किया था। न्यायालय ने 31 जुलाई 1986 को उक्त दोनों महानुभावों को बरी करते हुए निर्णय दिया है कि –

"कुरान मजीद" की पवित्र पुस्तक के प्रति आदर रखते हुए उक्त आयतों के सूक्ष्म अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ये आयतें बहुत हानिकारक हैं और घृणा की शिक्षा देती हैं, जिससे मुसलमानों और देश के अन्य वर्गों में भेदभाव को बढ़ावा मिलने की सम्भावना होती है।"

उपरोक्त आयतें इस्लामी रिलीजन की मानसिकता को स्वयं सुस्पष्ट करती हैं। इसलिए यवनों के भारत पर 636 ई. से ही हमले प्रारम्भ हो गए थे और 671 ई. तक आठों हमले असफल कर दिए गए। मगर बाद में मुस्लिम राज्य काल (712-1757) में मुस्लिम सुलतानों की कुरान और हदीसों के अनुसार हिन्दुओं के प्रति जो नीतियाँ रहीं उसके मुख्य अंग निम्न प्रकार थे: –

1. आक्रामकों द्वारा विजित क्षेत्रों के राजा, उसके परिवार व सैनिकों एवं प्रजाजनों को मुसलमान बनने को विवश करना, न मानने पर कत्ल करना या कैद करना या गुलाम बनाकर बेचना, बच्चों और स्त्रियों को धर्मान्तरित करना या वध करना।

2. हिन्दुओं के मनोबल को गिराने के लिये उनके पूजा स्थलों को अपवित्र करना, मूर्तियों को तोडना, उन्हें पैरों तले रौंदने के लिये सड़कों या मस्जिदों की सीढ़ियों पर डालना, मन्दिरों को मस्जिदों व मकबरों में बदल देना, उनकी जगह **खानकाहे** बनाना, नए मन्दिरों को बनाने या तोड़े गये मन्दिरों की मरम्मत की आज्ञा न देना, मन्दिरों में गाय कटवाकर डलवाना आदि शामिल था।
3. इस्लाम कबूल न करने पर हिन्दुओं को सार्वजनिक जगहों पर क्रूरतापूर्वक वध करना, उनकी आँखे फोड़ना, खाल उतरवाना, आरे से चिरवाना, कटे हुये सिरों की मीनार बनवाना, कटे हुये सिरों को बांसों पर टांग पर सड़कों पर घुमवाना, बच्चों को दीवारों पर चिनवाना आदि।
4. हिन्दुओं पर आर्थिक दबाव डालना, जज़िया कर लगाना, व्यवसाय में मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं से अधिक कर लेना, सरकारी नौकरियों में मुसलमानों को वरीयता देना एवं हिन्दुओं को महत्त्वपूर्ण उच्च पदों पर न रखना आदि।
5. राजाओं व मन्दिरों के कोष तथा प्रजा से धन लूट कर विदेश ले जाना या भारत के छोटे राज्यों के इस्लामीकरण के लिये सैन्य शक्ति बढ़ाने में लगाना।
6. हिन्दुओं के त्योहारों व धार्मिक जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगाना, तीर्थ यात्राओं पर कर लगाना ताकि उनके धार्मिक उत्सव एवं सामाजिक संगठन समाप्त हो जायें।
8. युद्ध बन्दी पुरुषों को सेना में भर्ती कर हिन्दुओं के विरुद्ध लड़ने को विवश करना तथा स्त्रियों को नवाबों के हरमों में भेजना या मुसलमानों के साथ जबरन शादी कराकर मुस्लिम जनसंख्या को तेजी से बढ़ाना।

इतिहास साक्षी है कि सभी विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं और सुलतानों ने भारत में उपरोक्त नीतियों को अधिकांशत: अपनाया, लाखों निरपराध हिन्दू मारे और उनके हज़ारों मन्दिर तोड़े गए। क्रूर आक्रमणकारी तैमूर लिंग ने तो भारत पर अपने हमला करने के उद्देश्य को स्वयं ही अपनी जीवनी में स्पष्ट कर दिया है कि "मेरे हिन्दुस्तान पर हमले करने के दो उद्देश्य रहे हैं:– **पहला काफिरों के साथ युद्ध करना जो मोहम्मदीय मत के विरोधी हैं, ताकि मैं इस धार्मिक युद्ध द्वारा भावी जीवन**

के लिये कुछ नियामतें पाने का हकदार बन सकूं। दूसरा यह कि इस्लाम की सेना को काफ़िरों के धन, सम्पत्ति और बहुमूल्य पदार्थों की लूट का माल मिल सके क्योंकि इस्लाम के लिये लड़नेवालों मुसलमानों का युद्ध में लूटे माल गनीमत पर माँ के दूध के समान कानूनी अधिकार है।'' अमीर तैमुर व के. एस. लाल. – *दी लीजेसी ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया*, पृ. 80। लगभग सभी मुस्लिम सुलतानों की भारत में हिन्दुओं के प्रति यही नीति रही (पुरुषोत्तम, भारतीय मुसलमानों के हिन्दू पूर्वज; मुस्लिम राजनीतिक चिन्तन और आकांक्षाऐं, के. एस. लाल, *इंडियन मुस्लिम्स हू आर दे*, आदि)

ईसाइयत का स्वरुप

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ऐसा भेदभाव सिर्फ इस्लाम में ही है बल्कि इंसाइयत में भी ऐसा ही है और ऐसा प्रत्येक रिलीजन में होगा, और होना भी चाहिए क्योंकि प्रत्येक रिलीजन सिर्फ अपने पंथ को श्रेष्ठतम और सत्य, तथा अपने अनुयायियों को विशेष दर्जे का मानता है और दावा करता है कि सृष्टि कर्ता भी उन्हीं को प्यार करता है और शेष सब घृणा एवं मृत्यु के योग्य हैं जैसा कि बाइबिल (धम शास्त्र, दी होली बाइबिल इन हिन्दी 1950) के निम्नलिखित उद्धरणों से भी सिद्ध होता है।

1. 'यह न समझो, कि मैं पृथ्वी पर मिलाप कराने आया हूँ; मैं मिलाप कराने को नहीं, पर तलवार चलवाने आया हूँ। मैं तो आया हूँ, कि मनुष्य को उसके पिता से, और बेटी को उसकी माँ से, और बहू को उसकी सास से अलग कर दूं। मनुष्य के बेरी उसके घर के ही लोग होंगे'। (मत्ती 10. 34-36, पृ. 9)
2. क्या तुम समझते हो कि मैं पृथ्वी पर मिलाप कराने आया हूँ? मैं तुमसे कहता हूँ; नहीं, वरन् अलग कराने आया हूँ। क्योंकि अबसे एक घर में पांच जन आपस में विरोध रखेंगे, तीन दो से और दो तीन से, पिता पुत्र से, और पुत्र पिता से विरोध रखेगा; माँ बेटी से, और बेटी माँ से, सास बहू से, और बहू सास से विरोध रखेगी। (लूका 12.51-53, पृ. 63)
3. (यीशु ने कहा) 'परन्तु मेरे उन बेरियों को जो नहीं चाहते थे कि मैं उन पर राज्य करुं, उनको यहाँ लाकर मेरे सामने घात करो।' (लूका 19.27, पृ. 70)

4. 'जो विश्वास न करेगा वह दोषी ठहराया जायेगा' (मरकुस 16.16) और 'वह अनन्त दण्ड भोगेगा।' (मत्ती. 25.46)
5. 'हे श्रापित लोगो! मेरे सामने से उस अनन्त आग में चले जाओ' (मत्ती 25. 41)
6. 'जो विरोधी हों, उन्हें नरक के बीच उस आग में डाला जाए तो कभी बुझने की नहीं है।' (मरकुस 9.44)
7. 'यहोबा जल उठने वाला और पलटा लेने वाला ईश्वर है; यहोवा बदला लेने वाला और जल जलाहट करने वाला है; यहोवा अपने द्रोहियों से बदला लेता है और अपने शत्रुओं के पाप नहीं भूलता।' (नूहम 1.2, पृ. 799)
8. 'भला होता कि जो तुम्हें डॉवाडोल करते हैं, वे काट डाले जाते।' (गलतियों 5.12, पृ. 169)
9. यदि किसी की पुत्री, पत्नी या लडका दूसरे भिन्न धर्म को अपना ले तो उसे अपने इन निकट सम्बन्धियों की हत्या कर देनी चाहिये।' (व्यवस्था विवरण 13.6.10)
10. ''मूसा अपने सेनापतियों से कहने लगा ''तो अब बाल-बच्चों में से हर एक लड़के को और जितनी स्त्रियों ने पुरुष का मुंह देखा हो, उन सभी को घात करो। परन्तु जितनी लड़कियों ने पुरुष का मुंह न देखा हो, उन सभी को तुम अपने लिए जीवित रखो।'' (गिनती 31.17-18)
11. ''एलिय्याह ने विधर्मी चार सौ पचास पुरोहितों को मौत के घाट उतार दिया'' (1 राजा, 18.40)।
12. ''जो कोई यहोवा को छोड़ किसी और देवता के लिए बलि करे, वह सत्यनाश किया जाए'' (निर्गमन 22.20, पृ, 69)।
13. बाइबिल के परमात्मा का आदेश 'यहोवा ने तुझे यात्रा करने की आज्ञा दी और कहा; जाकर उन पानी अमालेकियों को सत्यानाश कर और जब तक वे मिट न जाऐं तब तक उनसे लड़ता रह' (1 शमूएल 15.18, पृ. 249)।
14. ''इसलिए अब तू जाकर अमालेकियों को मार, और जो कुछ उनका है उसे बिना कोमलता किए सत्यनाश कर: क्या पुरुष, क्या स्त्री, क्या बच्चा, क्या दूध पिउवा, क्या गाय-बैल, क्या भेड़-बकरी, क्या ऊंट, क्या गदहा, सब को मार डाल''। (1 शेमूएल 15.3, पृ. 249)। यह अत्याचार किसलिए? क्योंकि अमालेकियों ने चार सो वर्ष पहले इस्राएलियो का बुरा किया था।
15. ''और जब तेरा परमेश्वर यहोवा उसे तेरे हाथ मे सौंप दे, तब उसमें के सब पुरुषों को तलवार से मार डालना। परन्तु स्त्रियो और बाल बच्चो और पशु

> आदि जितनी लूट उस नगर में हो, उसे अपने लिए रख लेना, और तेरे शत्रुओं की लूट जो तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे दे, उसे काम में लाना (व्यवस्था विवरण 20.13-14, पृ. 171)

अब परमात्मा के कृपा पात्र दाऊद के कुछ आदर्श उदाहरण देखिए "और उसने उसके (रब्बा नगर) के रहने वालों को निकालकर, आरों से दो-दो टुकड़े कराया, और लोहे के डेंगें उन पर फिरवाए और लोहे के कुल्हाड़ियों से उन्हें कटवाया, और ईंट के पज़ावे में से चलवाया और अम्मोनियां के सब नगरों से भी उसने ऐसा ही किया (2. शमूएल 12.31, पृ. 276, 1950)। "तब दाऊद अपने जनों के संग चला और फिलस्तीनियों के दो सौ पुरुषों को मारा, तब दाऊद उनकी खलड़ियों को ले और वे राजा को गिन-गिन कर दी गई: इसलिए कि वह राजा का दामाद हो जाए और शाऊल (राजा) ने अपनी बेटी मीकल को उसे ब्याह दिया" (1 शमूएल 18.27, पृ. 253)। "दाऊद ने उस देश का नाश किया और स्त्री पुरुष किसी को जीवित नहीं छोड़ा'' (1 शमूएल 27.8-9)। 'तब दाऊद ने अरामियां के बीस हजार पुरुष मारे'' (2 शमूएल 8.6)। दाऊद ने उस से एक हजार सात सौ सवार, और बीस हजार प्यादे छीन लिए और सब रथवाले घोड़ों के सुम की नस कटवाई'' (2 समूएल 8.4)। बाइबिल ऐसे उदाहरणों से भरी पड़ी है।

एक अन्य उदाहरण– ईसाई सिवेलोट में धर्म युद्ध करते हुऐ दो वर्गों में बंट गए। जरमन और इटालवी। ईटालवी लॉर्ड रेनलेंड के नियंत्रण में और शेष ज्योफरी बुराल के मार्ग दर्शन में। बुराल की सेना के फ्रान्सिसियों ने टर्की के राज्य पर हमला किया और टर्की की राजधानी नाइसिया तक पहुँच गए और अनेकों गाँवों पर कब्जा कर लिया। इन गाँवों के निवासी अधिकांश ग्रीक ईसाई थे। लेकिन फ्रान्सीसी ईसाइयों ने इन्हें यातनाऐं दी और मार डाला। उन्होंने बच्चों तक को भालों की नोकों पर भून डाला। हालांकि इसके कोई प्रमाण नहीं है कि उन्होंने खाया है। पुन: वे टिड्डी दल की तरह उन पर टूट पड़े। अंगूरों की बेलों को उखाड़ दिया। फसलों और मकानों को जला दिया। जानवरों को कत्ल कर दिया और सब बहुमूल्य समान लूट कर ले गए। उन्होंने निर्दयता से लूटा और बलात्कार किए। कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं कि उन्होंने खेतों में नमक फैला दिया। ताकि अगले कई वर्षों तक दुबारा कोई फसल न उग सके (दी क्रूसेडस, ले. रिचर्ड सुस्किंड)।

इसीलिये थॉमस जेफ़रसन ने कहा 'बाइबिल का परमात्मा क्रूर, बदला लेने वाला, अन्यायी और स्वेच्छाचारी है। उसका चरित्र बडा भयंकर है। यहूदी पुरोहित खून के प्यासे हैं''। (टी. जे. रैण्डोल्फ द्वारा सम्पादित स्मृतियाँ एवं पत्रव्यवहार खंड, पृ. 326-327)।

ईसाइयत की मतान्धता, बर्बरता और अमानुषिक अत्याचारों को यूरोप ही नहीं भारत के इतिहास में भी देखा जा सकता है। 'गोवा इन्क्वीजन' के नाम से विख्यात ईसाई प्रशासकों के अत्याचारों को पढ़कर रोंगेटे खड़े हो जाते हैं जिन्होंने हिन्दुओं पर ही नहीं मुसलमानों और यहूदियों पर भी अत्याचार किए, जहाँ उन्होंने हिन्दुओं के निरपराध स्त्री पुरुष व बच्चों को कत्ल किया वहाँ अनेकों मन्दिर भी तोड़े तथा शादी विवाहों और दैनिक जिन्दगी पर अनेक प्रतिबन्ध लगाए। 1498 में पुर्तगाली वास्कोडिगामा के आगमन के बाद पुर्तगालियों ने गोवा में अपना राज्य स्थापित कर लिया और हिन्दुओं के धर्मान्तरण के लिए उन पर अनेकों अत्याचार किए। यहाँ उन्होंने दो प्रकार की नीतियां अपनाई। ईसाइयत का विरोध करने वाले हिन्दुओं पर अन्याय और अत्याचार एवं नव-ईसाइयों को प्रलोभन एवं सुविधाएं। इसके लिए पुर्तगाली प्रशासकों ने 1559 से 1737 ई० तक अनेकों हिन्दू विरोधी कानून बनाए (देखिए ऐन्टी-हिन्दू लॉज़ इन गोआ, गोआ इन्क्वीज़ीशन, ए०के० प्रयोलकर, पृ०114-149)।

इन हिन्दू विरोधी नियमों में मुख्य थे:- ब्राह्मणों को देश निकाला, उनकी सम्पत्ति हड़पना, मन्दिर नष्ट करना तथा नए मन्दिर न बनाने देना एवं पुरानों की भी मरम्मत न करने देना, हिन्दू रीति रिवाजों पर प्रतिबन्ध लगाना जैसे हिन्दू रीति रिवाजों से विवाह व नामकरण संस्कार न करने देना, यज्ञोपवीत न पहनने देना, चोटी रखना और घर के आंगन में तुलसी का पौधा न लगाने देना आदि। अथवा ऐसा करने पर भारी जुर्माना, अध्यापक और पुजारियों का विनाश तथा ईसाइयत के प्रचार-प्रसार में अवरोध करने वालों को देश निकाला, उनको अपनी सम्पत्ति से बेदखल करना, ऐसे लोगों को अपनी जीविका से वंचित करना तथा गाँवों में अपने पैत्रिक अधिकारों से वंचित करना, हिन्दुओं के अपाहिज बच्चों को छीन कर उन्हें ईसाइयत में दीक्षित करना, हिन्दू स्त्री पुरुषों को जबरदस्ती ईसाइयत के उपदेशों को सुनने को विवश करना आदि। इसके विपरीत ईसाइयत को बढ़ावा देने के लिए ऐसे कानून बनाए गए जिससे प्रशासन में ईसाइयत का एकाधिकार एवं प्रमुख पदों पर ईसाइयों को प्रमुखता, धर्मान्तरण के बाद पैतृक हिन्दू सम्पत्ति में नव-ईसाइयों को अधिकार में परिवर्तन, ग्रामीण जीवन में हिन्दू ईसाइयों में भेदभाव व पक्षपात तथा ईसाइयों को विशेषाधिकार आदि। इनके अलावा गोवा इन्क्वीज़ीशन ने भी विशेष भूमिका निभाई। परिणामस्वरुप 1567 में ही 280 हिन्दू मन्दिर नष्ट कर दिए गए। इसीलिए आज वहाँ हिन्दू मन्दिर नगण्य हैं। पुर्तगाली ईसाई शासनकाल में ब्राह्मणों और स्वर्णकारों पर महान अत्याचार हुए जिनकी गाथाऐं आज भी रोंगटे खड़े कर देती है। यहाँ आर्कबिशप एवोरा का 1897 में लिस्बन की केथेडरल चर्च में दिए गए वक्तव्य को एक उदाहरण के रुप में देना पर्याप्त होगा।

"वैसे तो इन्क्वीज़ीशन सभी जगहों पर एक बदनाम न्यायाधिकरण था। लेकिन इतनी बदनामी, इतनी गहराई तक नहीं पहुंची, न कहीं इतनी घृणास्पद थी, न इतनी जघन्य और न कहीं इतनी निर्लज्ज स्वार्थों से पूर्ण थी जैसा कि गोवा का न्यायाधिकरण या ट्रिब्यूनल जिसे संयोगवश 'होली (पवित्र) आफ़िस' कहा जाता है। यहाँ पर इन इन्क्वीज़ीटर यानी ईसाई धर्म न्यायाधिकरण के अधिकारीगण इस हद तक चले गए कि जिन हिन्दू स्त्रियों ने उनके साथ बलात्कार करने देने का विरोध किया उन्हें जेलों में डालकर अपनी कामवासना की पूर्ति के बाद उन्हें हेरेटिक्स यानी ईसाई अविश्वासी कहकर जिन्दा जलाने का आदेश दे दिया" (दी गोआ इन्क्वीजीशन, ए०के० प्रियोलकर, पृ० 175)। "The Inquisition was an infamous tribunal at all places. But the infamy never reached greater depths, nor was more vile, more black, and more completely determined by mundane interests than at the tribunal of Goa, by irony called Holy Office. Here the Inquistors went to the imprisoning in the jails women who resisted their advances, and after having satisfied their bestial instincts there, ordering that they be burnt as herectics" (Archbishop of Evora at the Cathederal Church of Lisbon in 1897)। इसके अलावा "हंटर कहता है कि पुर्तगालियों ने एक सुन्दर मस्जिद को चर्च में बदल दिया और आठ अन्य मन्दिर पूजा घर (चर्च) बना दिए" (इम्पी. गज. IV, पृ. 101)। आज भी स्वतन्त्र भारत को तोड़ने व यहाँ ईसाई साम्राज्य स्थापित करने की गतिविधियाँ तीव्र गति से पनप रही हैं।

हिन्दू धर्म का स्वरुप

हिन्दू धर्म का स्वरुप ईसाइयत एवं इस्लाम रिलीजन से पूर्णतया भिन्न है। जहाँ ये रिलीजन मानव मात्र में घृणा व द्वेष फैलाते हैं, हिन्दू धर्म, समता, समता एवं परस्परिक भाईचारे, प्रेम व विश्व व्यापी मानव कल्याण का उपदेश देता है। इसमें ऊँच-नीच, अपने पराये की भावना लेशमात्र भी नहीं है। देखिए कुछ प्रमाण:

1. 'मनुष्यों में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। ये सब बराबर के भाई हैं। वे सब मिलकर लौकिक तथा पारलौकिक उत्तम ऐश्वर्य के लिये प्रयत्न करें। (ऋ. 5.60.5)
2. 'हे मनुष्यो! तुम सब एक हृदय से, एक मन से निर्द्वेष हो कर रहो। एक दूसरों को सब ओर से प्रेम करो जैसे गाय निर्विकार होकर नवजात बच्चे

को दूध पिलाकर पुष्ट करती है'। (अथर्व 3.30.1)
3. "हमारी अपनों के प्रति प्रीत हो, परायों के प्रति प्रीत हो, हे अश्वो देवो! तुम हमें परस्पर मिलकर रहने का गुण प्रदान करो।" (अथर्व 7.52.1)
4. 'हम सब मनुष्य एक दूसरे के प्रति मित्र की भावना से देखें'। (यजु. 36. 18)
5. "हे मनुष्यो! तुम्हारे संकल्प एक समान हों। तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हों। तुम्हारे मन समान हों जिससे तुम लोग परस्पर मिलकर एक होकर रहो।" (ऋ. 10.181.2, 4)
6. "यह सारा संसार नीरोग और सौमनस्यपूर्ण हो।" (यजु. 16.48, ऋ. 1.165. 4)
7. "सभी मनुष्यों एवं पशुओं का कल्याण हो।" (यजु. 16.58, ऋ. 1.165.1)
8. "हम लोगों को सुखमय बनाकर अपने वश में करें"। (अथर्ववेद 20.63. 1)
9. 'हे प्रभो! हमें लोक हितकारी सद् बुद्धि दो'। (ऋ. 7.100.2)
10. 'एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की सब ओर से रक्षा करे।' (ऋ. 5.35.2)

इस प्रकार वेदों के सैकड़ों मंत्र आदि काल से समतावादी वैदिक धर्म या हिन्दू धर्म की प्रेरणा देते आ रहे हैं। ***हिन्दू धर्म में एक भी शब्द मानव मानव के बीच सिर्फ रिलीजन के आधार पर, घृणा फैलाने वाला नहीं है।*** इतना ही नहीं, हिन्दू धर्म अपने अनुयायी, मनुष्यों तो क्या पशु, पक्षियों, कीड़े-मकोड़ों तथा वनस्पतियों से भी करुणा एवं ममता सहित व्यवहार करने का आदेश देता है। महर्षि मनु ने कहा "समस्त वृक्षों और पोधों में चेतना अन्तर्निहित होती है और उनमें वेदना और प्रसन्नता अनुभव करने की क्षमता होती है"। (मनुस्मृति 1.49) इसीलिये हिन्दू कीड़े मकोड़ों एवं वनस्पतियों तक में प्राणवत् चेतन आत्मा का दर्शन करता है और उनको केवल ममता से ही नहीं देखता बल्कि उपयोगी वृक्षों को पूजता भी है। इस प्रकार हिन्दू धर्म वाह्य वातावरण से पूर्णतया स्नेहयुक्त, सर्व सामंजस्यकारी एवं सहयोगात्मक है जबकि अन्य रिलीजन व्यक्तिनिष्ठ, अलगाववादी, प्रतिक्रियावादी एवं द्वेषपरक हैं।

हिन्दू धर्म में प्रत्येक अनुयायी को अपनी आस्था, बुद्धि, ज्ञान एवं विश्वास के अनुसार परमेश्वर की उपासना, किसी भी प्रकार से करने की आज़ादी है। उपासना विधि के विषय में कोई बन्धन नहीं हैं क्योंकि श्रीमद्भगवत् गीता में श्री कृष्ण कहते हैं कि जो कोई भी मेरी आराधना किसी भी रूप में करता है, मुझे पा लेता है। हिन्दू धर्म में व्यक्ति का अपने सृष्टिकर्ता के साथ सीधा सम्बन्ध है उसे ईश्वर साक्षात्कार

के लिये, अपने और सृष्टिकर्ता के बीच किसी अन्य पारदर्शी मानव शरीर की मसीहा, मुल्ला एवं पंडित की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू तो आत्मनवादी है। वह तो अपनी ही आत्मा में परमात्मा का निवास मानता है। फिर अन्य बाहरी व्यक्ति की जरुरत क्यों? साथ ही सबकी आत्मा में अपना जैसा परमात्मा देखता है, तभी तो वह समतावादी है।

हिन्दू धर्म मानव धर्म अपनाने पर बल देता है, क्योंकि धर्म से ही अर्थ प्राप्त होता है, धर्म से ही सुख मिलता है, धर्म से ही सारे लाभ, हित और कल्याण होते हैं यहाँ तक कि धर्म ही इस जगत में जीवन का सार है (**सर्वं धर्म सारमिदं जगद्**, रामा. अरण्य. 9.30)। जब धर्म की अवहेलना होती है, सम्प्रदाय या रिलीजन की मतान्धता में अधर्म होता है तो मानवता नष्ट हो जाती है। मनुस्मृति का वचन है कि "नष्ट किया हुआ धर्म ही नाश का कारण बनता है और रक्षा किया हुआ धर्म व्यक्ति की रक्षा करता है। नष्ट किया हुआ धर्म कहीं हमें भी नष्ट न कर दे, इसलिए कभी धर्म का नाश नहीं करना चाहिए'' (मनु. 8.15)।

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।। (मनु. 8.15)

जिन लोगों में विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील और सद्गुण आदि धर्म का कोई लक्षण नहीं है वे भूमि पर भार स्वरुप होकर मनुष्य रूप में मानो पशु हो विचरण करते हैं। (भतृहरि नी. श. 13) यानी अधार्मिक मनुष्य पशु के समान हैं।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

इतना ही नहीं किसी के मानव धर्म को हानि पहुंचाना भी अधर्म माना गया है महाभारत के अनुसार "धर्म (का अंश) जो किसी (व्यापक) धर्म में बाधा पहुंचाता है, वह धर्म नहीं अधर्म है क्योंकि हे सत्यविक्रम, **धर्म तो वही है जो किसी अन्य के धर्म का विरोध नहीं करता**'' (महा. वनपर्व 131.11)।

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्मकः।
अविरोधान्तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम।।

अतः हिन्दू धर्म मानव धर्म के सह अस्तित्व को मानता है, परन्तु अकारण हिंसा व अमानवीय कृत्यों व पक्षपात व असत्य को अधर्म मानता है। इन्हीं सब कारणों से हिन्दुज्म रिलीजन नहीं सम्पूर्ण मानव धर्म है। यह निष्पक्ष, विवेकपूर्ण, समतावादी, तथा तर्कसंगत धर्म है। इसमें किसी प्रकार का कट्टरपन नहीं है तथा स्वतन्त्र चिन्तन की प्रेरणा के साथ तर्क संगत विरोधी विचारों के परीक्षण के लिये भी स्थान है। यह वैज्ञानिक प्रगति, सर्वांगीण विकास तथा उच्च मानवीय मूल्यों को

अपनाने की प्रेरणा देता है। हिन्दू धर्म का मूल मंत्र है 'मानव का सर्वांगीण विकास एवं प्रत्येक मानव को मानवता की सर्वोच्च सीढी तक उठाकर ले जाना'। वेद का नारा है '**कृणवन्ते विश्वमार्यम्**' यानी हम विश्व भर के लोगों को श्रेष्ठ मानव बनाऐं। उसके लिए हिन्दू धर्म श्रेष्ठ विचारों का चारों तरफ से स्वागत करता है। इसके लिये ज्ञान-विज्ञान की लगातार खोज एवं सत्य तथा निष्पक्ष आचरण की आवश्यकता है जो किसी भी रिलीजन से संभव नही है। इन्हीं कारणों से हिन्दू रिलीजन नहीं है, सम्पूर्ण धर्म है। इसमें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान कर्तव्य व्यवस्था, दर्शन, आचरण, व्यक्ति एवं समष्टि के पारस्परिक व्यवहार का सम्यक विधि विधान है और सबसे बड़ी विशेषता है कि हिन्दू धर्म मनुष्यों को स्व-विवेकानुसार सत्य, निष्पक्ष, मानवोपयोगी व्यवहार की प्रेरणा, स्वतन्त्र चिन्तन एवं अभिव्यक्ति की अनुमति देता है और इसका अन्तिम लक्ष्य है मानव कल्याण और मानव निर्माण जो कि किसी रिलीजन से संभव नहीं है और इस्लाम में तो बिल्कुल ही नहीं जिसमें स्वतन्त्र चिन्तन की लेशमात्र भी अनुमति नहीं है।

इसीलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा "**हमारा धर्म रिलीजन नहीं है** वह मनुष्य का एकांश नहीं है। वह राजनीति से तिरस्कृत नहीं है, वह युद्ध से बहिष्कृत नहीं है, वह व्यवसाय वे निर्वासित नहीं है। दैनन्दिन व्यवहार से दूरीकृत नहीं है"। हिन्दू धर्म सत्य और सनातन है। भगिनी निवेदिता कहती है कि "सनातन धर्म, ज्ञान प्राप्त करने के सच्चे प्रयास के प्रत्येक रुप को अनुमति देता है और उसे स्वीकार करता है। वह सत्य के किसी भी रुप से न ईर्ष्या करता है, न उस पर सन्देह। सम्भवतः इसी में हिन्दू धर्म का यर्थाथ गौरव है"। श्री अरविन्द कहते हैं "जिसे हम हिन्दू कहते हैं, वह वास्तव में सनातन धर्म है।

5

एकेश्वरवाद

धर्म के आध्यात्मिक स्वरूप को समझने के लिये आस्तिकवाद एवं एकेश्वरवाद की अवधारणाओं और इनके पारस्परिक अन्तर को समझना उपयोगी होगा। मैक्समूलर ने रिलीजन की परिभाषा में 'अनन्त की आकांक्षा' कहा। वह अनन्त केवल एक ही हो सकता है और वही एक अनन्त सभी दृश्य एवं अदृश्य जगत का रचनाकार है। उस अनन्त ने जिसे ईश्वर, अल्लाह, गॉड, जिहोबा आदि किसी भी नाम पुकारो, जगत के मनुष्यों के लिये सब नियम एक समान ही बनाऐं होंगे जिनमें देश, काल, भाषा, रंग, लिंग, आदि का कोई भेदभाव नहीं रहा होगा। जो लोग उस परमेश्वर में आस्था रखते हैं, वे आस्तिक हैं और क्योंकि ईश्वर केवल एक ही हो सकता है इसलिये उस एक ही में आस्था रखनेवालों को ही सच्चे अर्थो में एकेश्वरवादी कहलाना चाहिये। लेकिन यदि ऐसा नहीं है और एक ईश्वर में आस्था रखने के साथ-साथ वे यदि किसी विशेष अनिवार्यता के कारण किसी अन्य शक्ति या व्यक्ति में भी आस्था रखते हैं, तो उन्हें मर्यादित या सीमित एकेश्वरवादी कहना उचित होगा। जब किसी सम्प्रदाय या पंथ के लोग उस एक ही सार्वभौम सत्ता के साथ किसी अन्य व्यक्ति में भी विश्वास रखने लगते हैं तो यह एकेश्वरवाद नहीं रहता बल्कि मर्यादित-एकेश्वरवादी एक नया रिलीजन या पंथ बन जाता है। इस्लाम और ईसाइयत इसी प्रकार के मर्यादित-एकेश्वरवादी रिलीजन हैं अथवा सच्चे अर्थो में ये एकेश्वरवादी नहीं है। इस्लाम मौहम्मद और ईसाइयत ज़ीजस क्राइस्ट की अनिवार्यता के कारण दोनों ही मर्यादित-एकेश्वरवादी रिलीजन हैं।

ईसाइयत इस्लाम मर्यादित एकेश्वरवादी रिलीजन

विश्व के तमाम पंथों, मत-मतान्तरों एवं रिलीजनों की सबसे महत्त्वपूर्ण और एक समान धारणा यही रही है कि केवल उनका रिलीजन ही सच्चा है और अन्य सब झूठे

या आंशिक रूप में सच्चे हैं। इतना ही नहीं वे यह भी दावा करते हैं कि उनके रिलीजन के अनुयायी ही ईश्वर द्वारा चुने गये हैं, मानों शेष अन्य सब उसी प्रभु की द्वितीय श्रेणी की सन्तानें हैं। इस्लाम व ईसाइयत दोनों ने ऐसे ही दावे किए हैं।

सबसे पहले यहूदियों ने दावा किया कि सिर्फ यहोवा को पूजो "यदि जो कोई यहोबा को छोड़ किसी और देवता के लिए बलि करे वह सत्यानाश किया जाए" (निर्गमन 22.20)। इसके बाद ईसाइयों ने भी दावा किया कि सिर्फ ईसा को पूजो। वही न्याय कर्त्ता, सबका उद्धारक व पापों को क्षमा करने वाला है। देखिए प्रमाण:–

1. 'जो विश्वास करे (ईसा पर) और वपतिस्मा ले (पिता, पुत्र और पवित्रता के नाम पर ले.) उसी का उद्धार होगा परन्तु जो विश्वास न करेगा वह दोषी ठहराया जाएगा' (मरकुस 16.16, पृ. 16)।
2. 'उसकी सब भविष्य वक्ता गवाही देते हैं, कि जो कोई उस पर विश्वास करेगा, उसको उसके नाम के द्वारा पापों की क्षमा मिलेगी (प्रेरितों के काम 10.43, पृ. 113)।
3. "उन्होंने कहा, प्रभु यीशु मसीह पर विश्वास कर, तो तू और तेरा घराना उद्धार पाएगा" (प्रेरितों के काम 16.31, पृ. 119)।
4. "यीशु ने उससे कहा, मार्ग और सच्चाई और जीवन मैं ही हूँ। बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुँच सकता" (यूहन्ना 14.6, पृ. 94)।
5. (यीशु ने कहा) "हे सब परिश्रम करने वालो और बोझ से दबे हुए लोगो, मेरे पास आओ, मैं तुम्हें विश्राम दूंगा" (मत्ती. 11.28)।
6. "द्वार मैं हूँ यदि कोई मेरे द्वारा भीतर प्रवेश करे तो उद्धार पाएगा (यूहन्ना 10.9, पृ. 89)।
7. "क्योंकि उसमें (यीशु मसीह) ईश्वरत्व की सारी परिपूर्णता सदैव वास करती है" (कुलिस्सियों 2.9, पृ. 179)।
8. "और पिता किसी का न्याय नहीं करता, परन्तु न्याय करने का सब काम पुत्र को सौंप दिया है" (यूहन्ना 5.22, पृ. 83)।
9. "इसीलिए जो उसके द्वारा परमेश्वर के पास आते हैं, वह उनका पूरा-पूरा उद्धार कर सकता है, क्योंकि वह उनके लिए विनती करने को सदैव जीवित है" (इब्रानियों 7.25, पृ. 197)।
10. "तो भी यह जानकर कि मनुष्य व्यवस्था के कामों से नहीं, पर केवल यीशु मसीह पर विश्वास करने के द्वारा धर्मी ठहरता है, हमने आप भी मसीह यीशु पर विश्वास किया, कि हम व्यवस्था के कामों से नहीं, पर मसीह पर

विश्वास करने से धर्मी ठहरें, इसलिए कि व्यवस्था के कामों से कोई प्राणी धर्मी न ठहरेगा" (गलतियों 2.16, पृ. 167)।

उपरोक्त उद्धरणों से सिद्ध होता है कि ईसा ने स्वयं अपने को उद्धारक, न्यायकर्त्ता और ईश्वर तक पहुंचने का एकमात्र द्वार व साधन बतलाया जिससे ईसाइयत में ईसा की अनिवार्यता सिद्ध होती है। अतः ईसाइयत शुद्ध एकेश्वरवादी रिलीजन नहीं है।

इस्लाम एकेश्वरवाद

ईसाइयत की तरह इस्लाम भी एकेश्वरवादी नहीं है। यह भी मर्यादित एकेश्वरवादी रिलीजन की श्रेणी में आता है, क्योंकि यहाँ भी एक ईश्वर के साथ मौहम्मद को रसूल मानना आवश्यक है **"ला इलाहा इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह"** यानी "अल्लाह के अलावा अन्य कोई पूजने योग्य नहीं है और हजरत मौहम्मद अल्लाह का रसूल है"। देखिए कुछ प्रमाणः–

1. "मुसलमानो! अल्लाह और रसूल की आज्ञा पालन करो।" (कु. म. 4.59, पृ. 79)।
2. "आपके फैसलों को तमाम मामलों में बिना कुछ कहे सुने मान लेना "ईमान की शर्त है" (कु. म. 4.65)।
3. "जिसने रसूल का आज्ञापालन किया उसने अल्लाह का आज्ञा पालन किया" (कु. म. 4.80)।
4. "आपके हुक्म के खिलाफ चलना मुसीबत और अज़ाब को बुलाना है" (कु. म. 24.63)।
5. "जो आप पर ईमान न लाए उसके लिए 'जहन्नम' है" (कु. म. 48.13)।
6. "मुहम्मद बस अल्लाह के रसूल हैं" (कु. म. 3.144)।
7. "वे पैगम्बरों में से हैं" (कु. म. 36.3)। "मौहम्मद अल्लाह के 'रसूल' और नबियों के सिलसिले को समाप्त करने वाले (अन्तिम 'नबी') हैं" (कु. म. 33.40, पृ. 77)।
8. "रसूल के फैसले के बाद किसी ईमान वाले को कोई अधिकार बाकी नहीं रहता" (कु. म. 25.27, पृ. 79)।
9. "और (हे नबी) हमने तुम्हें समस्त मनुष्यों को सचेत करने वाला बनाकर भेजा है" (कु. म. 34.28, पृ. 769)।
10. "आपका इन्कार करने वालों के लिए क्षमा नहीं" (कु. म. 9.80, पृ. 78)।
11. "आप पर ईमान लाओ" (कु. म. 57.7, पृ. 78)।

इसके अलावा इस्लाम अल्लाह और रसूल के साथ कुरान पर विश्वास लाना भी आवश्यक मानता है। देखिए प्रमाणः–

1. "अल्लाह पर, 'रसूल' पर और 'उस प्रकाश' पर 'ईमान' ले आओ जो अल्लाह ने उतारा है" (कु. म. 64.8, पृ. 78)।
2. "उस ग्रन्थ को अल्लाह ने उतारा है" (कु. म. 3.7, पृ. 80) पृ.।
3. "अल्लाह ने कुरान मुहम्मद सल्स. पर थोड़ा-थोड़ा उतारा" (कु. म. 76. 23, पृ. 82)
4. "जो लोग कुरान पर ईमान नहीं लाते वे वास्तव में बहरे और अंधे है" (कु. म. 41.44, पृ. 83)।

इतना ही नहीं इस्लाम में मौहम्मद सल्ल. के उपदेशों, आचरणों व क्रियाकलापों जिन्हें हदीसों में आदर्श रूप कहा गया है, का मानना भी जरुरी है। हालांकि अल्लाह महसुयूती के मतानुसार **हदीसों की संख्या दो लाख के ऊपर है** (हदीस का परिचय मु. फारुख पृ. 313), परन्तु प्रामाणिक हदीसों की संख्या निश्चित नहीं है, उनमें व्यापक विरोधाभास एवं अवैज्ञानिक व अमानवीय अंशों का समावेश है। इस तरह मर्यादित एकेश्वरवाद में हजरत मौहम्मद के अलावा तेईस सालों में उतरी कुरान और हदीसों की अनिवार्यता ने इस्लाम के शुद्ध एकेश्वरवादी न होने का प्रमाण स्वयं प्रस्तुत कर दिया है। इतना ही नहीं कुरान के सूक्ष्म अध्ययन से स्पष्ट होता है कि व्यवहार में मौहम्मद साहब की आज्ञाओं का पालन करना और हदीसों में वर्णित उनके आदर्श चरित्र को मानना व अपनाने की अनिवार्यता खुदा की इबादत से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है। मौहम्मद के आदेश सारी कुरान में छाए हुए हैं। खुदा के नाम पर अपनी बात कहना उनकी विशेषता है। क्योंकि इस्लाम की तरह किसी भी अन्य रिलीजन में उसके संस्थापक के आदर्शो को मानना रिलीजन की विशेषता होगी। यदि ऐसा इस्लाम व ईसाइयत में है तो कोई आश्चर्य नहीं। रोबर्ट ई. बर्न्स के अनुसार तो इस्लाम का खुदा भी, उसे न मानने वालों के प्रति क्रूर, प्रतिशोधी व डराने वाला है जो कि कुरान की 817 आयतों से सिद्ध होता है (रैथ आफ़ इस्लाम, पृ. 155)।

उपरोक्त विवेचन से सिद्ध होता है कि ईसाइयत और इस्लाम दोनों ही क्रमशः जीजस क्राइस्ट और मौहम्मद की अनिवार्यता के कारण शुद्ध एकेश्वरवादी नहीं हैं।

हिन्दू एकेश्वरवाद

उपरोक्त मर्यादित-एकेश्वरवादी आस्तिक रिलीजनों के परिप्रेक्ष्य में हिन्दू धर्म की क्या स्थिति है? इस बात का मैक्समूलर ने आर्गिल के प्रशासक को लिखे पत्र में स्पष्ट स्वीकार कर लिया है कि "आर्य जाति के प्रारम्भिक धर्म का स्वरुप यथा संभव एक शुद्ध एकेश्वरवाद था। हाँ यह निश्चय सत्य है" (मैक्समूलर की जीवनी एवं पत्र न्यूयार्क, 1901) इस कथन से इस समस्या का तो निश्चित समाधान हो जाता है कि वैदिक युग में हिन्दुओं के पूर्वजों का मूल धर्म शुद्ध एकेश्वरवाद था, और आज भी इसमें किसी अन्य व्यक्ति की अनिवार्यता के कारण, ईसाइयत या ईस्लाम की तरह, हिन्दुज़्म कोई मर्यादित एकेश्वरवादी रिलीजन नहीं है।

हिन्दू धर्म के आदि स्त्रोत एवं प्रामाणिक धर्म ग्रन्थ वेदों में सर्व शक्तिमान, असीम, अनन्त, सार्वभौम सत्ता को एक ही माना है। **स एष एक-एक वृदेकएव,** (अर्थव. 13.4.12.20) इस एक को ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, महादेव, हरि, ओइम्, इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण आदि विभिन्न नामों से पुकारा गया है (अथर्व. 13.4.3.5)। तथा स्पष्ट कहा गया है कि **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति** (ऋ. 1.164.46) यानी "वह **सच्चिदानन्द परमेश्वर एक ही है जिसे विद्वान् लोग विभिन्न नामों से पुकारते हैं।**" "एक ही प्रभु जो पृथ्वी पर रहने वाले पांच प्रकार के मनुष्यों, तथा सब प्रकार के धनों का स्वामी है, वही उपास्य है। (ऋ. 1.7.9)।

"जिसके आंख, मुख, बाहु और पांव सर्वत्र हैं, वही एक दिव्यगुण युक्त प्रभु द्यौलोक और पृथिवी को उत्पन्न करता है" (ऋ. 10.81.3)।

"वह परमात्मा, न ही दूसरा है, न ही तीसरा, न चौथा, न ही पांचवां, न ही छठवां, न ही सातवां, आठवां, नौवां और न ही दसवां है। जो इस देव को एक ही मानता है, वह उसको ही प्राप्त होता है। अर्थात् परमेश्वर एक ही है। एक से अधिक नहीं (अथर्व. 13.4(2) 16-18)।

इसी प्रकार हिन्दू धर्म शास्त्रों पुराणों, महाभारत व उपनिषदों में समस्त संसार का कर्त्ता, धर्त्ता और संहर्त्ता एक ही परमेश्वर माना गया है जिसे विभिन्न नामों से पुकारा गया है। इन शास्त्रों में ईश्वर प्राप्ति के लिए किसी अन्य की अनिवार्यता भी नहीं हैं। कोई भी हिन्दू अपनी साधना, तपस्या व प्रार्थना से भगवान् से सीधा सम्बन्ध जोड़ सकता है। आत्मनावादी हिन्दू तो प्रभु के प्रकाश को अपनी अन्तरात्मा में हर

समय ही अनुभव करता है। अतः हिन्दू धर्म में किसी अन्य बाहरी व्यक्ति की अनिवार्यता न होने के कारण हिन्दू धर्म शुद्ध एकेश्वरवादी है। इस्लाम व ईसाइयत की तरह मर्यादित एकेश्वरवादी नहीं। हालांकि हिन्दू धर्म में भी मौहम्मद व जीजस की तरह अनेकों सन्त, महात्मा, समाज सुधारक व तत्त्ववेत्ता हुए हैं, मगर हिन्दू धर्म ने उन्हें अपना उद्धारक नहीं माना। किसी की मध्यस्थता को अनिवार्य नहीं बनाया हिन्दू धर्म प्रत्येक को ईश्वर मिलन को सीधी मान्यता देने के कारण शुद्ध एकेश्वरवादी है।

विश्व एक परिवार

यदि सृष्टि का रचियता वह अनन्त केवल एक ही है तो सारी की सारी सृष्टि की रचना बिना किसी भेदभाव के उसी परमेश्वर की ही मानी जायेगी। और उसकी दृष्टि में सारे प्राणी एक समान होंगे। हिन्दू धर्म तो घोषणा करता है कि **'वसुधैव कुटुम्कबम्'** यानी सारा विश्व एक ही परिवार है क्योंकि जब सृष्टि का आदि कर्त्ता एक ही है और सारी रचना उसी की है तो सारी सृष्टि स्वतः ही एक परिवार सिद्ध हो गई। यदि सृष्टि के रचनाकार एक से अधिक होते तो उनके रचे हुए परिवार भी उतने ही होते और फिर प्रत्येक परिवार के अपने अलग-अलग नियम एवं व्यवस्थाऐं होतीं तथा उन प्रत्येक परिवार के सदस्यों के अपने पारस्परिक वंशीय आसक्तियाँ होतीं। परिणामस्वरुप एक रचनाकार के परिवार के सदस्यों को दूसरे रचनाकारों के परिवार के सदस्यों के साथ रागद्वेष, स्पर्धा, ईर्ष्या आदि भी होती। आज प्रत्येक रिलीजन यही शिक्षा दे रहा है कि किसी विशेष रिलीजन के परिवार के अनुयायियों के साथ विशेष प्रेम एवं सम्मान के साथ व्यवहार करो एवं अन्य पंथ के परिवार के सदस्यों के साथ असमानता, घृणा एवं शत्रुतापूर्ण व्यवहार करो। मगर हिन्दू धर्म तो सारे विश्व के लोगों को एक समान मानने का आदेश देता है और सबके मंगल की कामना करता है।

6

पुनर्जन्म

यहाँ इस्लाम, ईसाइयत और हिन्दू धर्म पर पुनर्जनम की दृष्टि से विचार किया जाएगा, क्योंकि पुनर्जनम की अवधारणा इन तीनों में, मौलिक रूप से, इनकी भिन्नता सिद्ध करती है। सबसे पहले यह विचार किया जाए कि हिन्दू किसे समझा जाए? किन मान्यताओं से कोई व्यक्ति हिन्दू हो सकता है? क्या हिन्दू धर्म में कुछ ऐसे मौलिक तत्त्व हैं, जिनके मानने से व्यक्ति हिन्दू माना जाएगा? अन्यथा नहीं। इन प्रश्नों के विद्वानों ने उत्तर देने का प्रयास समय-समय पर किया है। मगर सभी परिभाषाऐं अनेकों सम्प्रदायों के कारण अधूरी पड़ जाती है।

हिन्दू कौन है?

इस प्रश्न का उत्तर इसमें ही छिपा है कि 'मैं कौन हूँ'? हर हिन्दू यह भली भांति जानता है कि जिस नाम से वह पुकारा जाता है, वह नाम एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से पहचान के लिए दिया जाता है। मनुष्य के व्यक्तित्त्व के दो अवयव हैं: (1) शरीर जो अवयवों का आवरण मात्र है। (2) दूसरा चैतन्यपूर्ण सत्ता, आत्मा जो जीवित मनुष्य के शरीर में विद्यमान है तथा शरीर के विभिन्न अंगों को गतिशील रखने तथा विचार कर कार्य करने की प्रेरणा देती है और फिर मन, बुद्धि एवं इन्द्रियों से वैसा ही करवाती है। जब तक आत्मा शरीर में रहती है, आदमी जीवित रहता है और आत्मा के निकलने पर शरीर निश्चल हो जाता है। यह नश्वर शरीर पड़ा रहता है। अतः आत्मा ही शरीर को सक्रियता प्रदान करती है।

हर हिन्दू का अटल विश्वास है 'कि शरीर नश्वर है, मरणधर्मा है परन्तु आत्मा नित्य है, अनश्वर है, शाश्वत है' (अथर्व 5.30.0)। इसी प्रकार 'आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है, न नष्ट होती है, न जलती है, न ही यह सूखती है' (गीता 2. 23-25)। हिन्दू का यह भी विश्वास है कि जब कभी कोई व्यक्ति मरता है, चाहे वह हिन्दू हो या न हो, उसकी आत्मा नश्वर शरीर को त्याग देती है। इसीलिये किसी व्यक्ति के मरने पर आम तौर पर कहा जाता है कि 'उसका देहान्त हो गया है' यानी उसकी देह का अन्त हो गया है और वह मर गया है। वह भली भांति जानता है कि जिस आत्मा ने अब तक शरीर को सक्रिय बनाए रखा था, उसने देह को त्याग दिया

है। वह मानता है कि "**जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर नए वस्त्र धारण कर लेता है उसी प्रकार आत्मा भी पुराने शरीर को त्याग कर नवीन शरीर को धारण कर लेती है**" (गीता. 2.22)। आत्मा के इस पुराने शरीर को छोड़ने और नये शरीर को धारण करने की क्रिया को आत्मा का आवागमन कहते हैं। पाश्चात्य विद्वान अंग्रेजी में इसे "मैटेमसाइकोसीस या देहान्तरण" कहते हैं। यह क्रिया लगातार चलती रहती है, जिसे हिन्दू प्रवाह से अनादि कहता है।

इस प्रकार हिन्दू वास्तव में केवल एक चेतन भौतिक स्वरुप ही नहीं है जिसे राम, श्याम, रेखा, कान्ता आदि कोई भी नाम दिया जाता है बल्कि आत्मा और शरीर का संयोग है। हिन्दू सदैव से आत्मनवादी है, शरीर वादी नहीं है। हिन्दू मानता है कि वह अजर, अमर एवं गतिशील आत्मा और नश्वर शरीर का योगमात्र है। आत्मा का धर्म है कि वह किसी भी शरीर को अपनाए, कुछ काल तक शरीर में रहने के बाद उसे त्याग दे और फिर दूसरा शरीर धारण करे। क्योंकि हिन्दू आत्मनवादी है इसलिए जो भी आत्मा का धर्म है वही हिन्दू का धर्म है। जिस तरह आत्मा प्राणी मात्र में भेद भाव नहीं करती है उसी तरह से हिन्दू भी मनुष्य मात्र में भेद नहीं करता है। अतः हम इस स्पष्ट निर्णय पर पहुंचते हैं कि **हिन्दू वह है जो आत्मा के आवागमन या पुर्नजन्म या जन्म-मृत्यु और पुनर्जन्म-रूपी चक्र को मानता व इसमें विश्वास रखता है।**

कोई हिन्दू मनु के हिन्दू धर्म के सभी दस लक्षणों को या इनमें से कुछ को माने या न माने, और यदि इसके विपरीत कोई अहिन्दू मनु के सब लक्षणों को एक हिन्दू से भी ज्यादा माने तो भी इन दोनों ही परिस्थितियों में कोई हिन्दू अहिन्दू नहीं हो सकता है। और न कोई अहिन्दू हिन्दू ही हो सकता है क्योंकि हिन्दू होने के लिए एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आवश्यकता यह है, कि उसका आत्मा के आवागमन में विश्वास होना चाहिए।

हिन्दुओं के प्रामाणिक धर्म ग्रन्थ वेदों में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मान्यता दी है (ऋ. 10.59.6, 7; यजु. 4.15 अथर्व 7.67.1)। इसीलिए पुनर्जन्म को मानने वालों को हिन्दू माना गया है। माधव दिग्विजय में 'ओंकार को मूल मंत्र मानने वाला और पुनर्जन्म विश्वासी को हिन्दू माना गया है'।

'ओंकार मूल मंत्राढ्यः पुनर्जनम दृढ़ाशयः।
गोभक्तो भारतं गुरुर्हिन्दुहिंसन दूषकः।।

हिन्दुओं के सभी कर्मकाण्ड एवं पूजा अर्चना वेदमन्त्रों से पहले ओ३म् शब्द लगाकर की जाती है। सिक्खों में "**एक ओंकार सद्गुरू प्रसाद**' ही मंगलाचरण है जैनियों में भी "**ओ३म् नमो अरिहंताणाम्**" गुरूमंत्र है तथा बौद्धों का प्रधानमंत्र

"**ओ३म् मणि पदे हुम्**" है। रामकोश के अनुसार '**श्रौतकर्म परायण**' यानी वैदिक कर्मकाण्ड करने वाला हिन्दू है। इस प्रकार पुनर्जन्म व ओ३म् को मानने वाले बौद्ध, सिख, व जैनी हिन्दू हैं।

जब आत्मा एक शरीर को त्यागकर दूसरे शरीर को धारण करती है तो उसके दूसरे जन्म में पिछले जन्म के कर्मों का भी घना सम्बन्ध होता है जो स्वतः ही आत्मा के आवागमन के साथ आ जाते हैं, जिसे कर्मफल का सिद्धान्त कहा गया है। आत्मा के आवागमन के साथ जुड़े होने के कारण यह एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है।

अन्य मतों में भी पुनर्जन्म विश्वास

आज यह कहना कि केवल हिन्दू ही हैं जिनका विश्वास है कि आत्मा का आवागमन होता है, सही नहीं है, क्योंकि कुछ और भी लोग है जो आत्मा के आवागमन को मानते हैं। फोनेसियनों और मिश्र वासी पहले आवागमन मानते थे। इसी प्रकार पाइथोगोरस का मत है कि "**मानव की दृष्टि से मृत्यु के बाद आत्मा कुछ समय विश्राम करती है जब तक कि वह पवित्र न हो जाए** और पिछले जन्म की घटनाओं को भूल न जाए और उसके बाद ही दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। इसी प्रकार सिसिलियन एम्पीडोक्लिस भी "आत्मा के आवागमन के बारे में पाइथोगोरस से सहमत था" (दी हिन्दू ले., पृ. 62)। प्रतीत होता है कि पाइथोगोरस ने यह सिद्धान्त प्राचीन वैदिकों से लिया हो।

पुनर्जन्म की पुष्टि

प्राचीन काल में आत्मा के आवागमन के सिद्धान्त को मानने वाले कम थे। वीसवीं सदी ने बुद्धिजीवियों को अनेकों चुनौतियाँ दी है एवं निष्पक्ष विद्वानों एवं वैज्ञानिकों ने इस समस्या पर धर्म, जाति तथा सामाजिक प्रथाओं की सीमाओं को लांघ कर सैकड़ों उदाहरणों के आधार पर पुनर्जन्म विषय का गम्भीर अध्ययन किया है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के परामनोविज्ञान के प्रोफेसर डॉ. आयन स्टीवेंसन ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। ये भारत में पुनर्जन्म के उदाहरणों के अध्ययन के लिये 1961 से लगातार आ रहे हैं। अभी कुछ समय पहले (15 दिसम्बर 1992) उन्होंने मैक्समूलर भवन दिल्ली में पुनर्जन्म पर जो भाषण दिया उसका मुख्य सार इस प्रकार है:–

1. ब्रिटिश सरकार ने हिन्दू धर्म पर कम ध्यान दिया।
2. अकेले भारत में उन्हें पुनर्जन्म के 300 उदाहरण मिले हैं।
3. उत्तरी अमरिका में शिया मुसलमानों में पुनर्जन्म के उदाहरण पाए गए हैं।

4. सामान्यतया सात वर्ष की उम्र के बाद पिछले जन्म की स्मृति धूमिल पड़ जाती है।
5. वे विशेष संवेदनात्मक अनुभूति के सिद्धान्त को नहीं मानते है। इन उदाहरणों का पुनर्जन्म ही सबसे उत्तम समाधान है। अतः डॉ. स्टीवेन्सन के अध्ययनों से सिद्ध होता है कि आत्मा का आवागमन होता है जैसा कि पाइथोगोरस ने भी माना है कि आत्मा का आना, जाना और फिर आना होता है, जैसा कि हिन्दू विश्वास करते हैं।

इस्लाम व ईसाइयत में मृत्यु के बाद क्या?

विश्व के अन्य मतों, जैसे ईसाइयत व इस्लाम, के अनुयायियों के शरीरों में भी आत्मा होती है और उनकी आत्मा का आवागमन भी होता है चाहे ये रिलीजन इस महान सत्य को माने या न मानें। क्योंकि किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं कि वह दूसरे से यह पूछे कि वह आत्मा के आवागमन को क्यों नहीं मानता है। व्यक्ति स्वतन्त्र है। उसे अधिकार है कि वह किसी विचार को माने या न माने। मगर इतना जरुर है कि '**जो भी व्यक्ति आत्मा के आवागमन को नहीं मानता है वह न हिन्दू है, और न हो सकता है और यही है गैर–हिन्दू की परिभाषा**।

ईसाई कौन हैं, पहले कोई इसकी परिभाषा नहीं दे सका था। मगर जब विश्व चर्चों की संस्था बनाई गई तो चर्च में प्रवेश के लिये यह आवश्यक कर दिया गया कि नए सदस्य को जीसस क्राइस्ट को '**गॉड**' और '**रक्षक मानना**' जरुरी है। फिर भी अनेकों ईसाई सम्प्रदाय ऐसे हैं जो 'जीसस के दैवत्व' में विश्वास नहीं रखते है और ऐसे ईसाई क्राइस्ट लैस क्रिश्चियन' कहलाते हैं। इसके अलावा ईसाइयत की अनेकों शाखाओं में पारस्परिक काफ़ी अन्तर है। इतने पर भी ईसाई की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं की जा सकी है।

रिसरेक्शन या सदेह उत्थानः हिन्दुओं के विपरीत ईसाइयों का विश्वास है कि 'न्याय के आखिरी दिन मृतक सदेह उठेगा। उस दिन तक ये सभी मृत शरीर या शव गढ़े रहेंगे'। हालांकि चर्च कब्रिस्तान में कुछ समय बाद उसी जगह पर दूसरे के शव को गाढ़ने की अनुमति दे देती है, फिर भी ईसाई रिसरेक्शन या मृतकोत्थान की धारणा में विश्वास रखते हैं तथा ईसाइयत में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मान्यता नहीं है। ईसाइयत के प्रचार में जीसस क्राइस्ट के मरणोपरान्त रिसरेक्शन या सदेहोत्थान एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु बन गया है। ईसाइ प्रचारकों ने इसे ऊपर स्वर्ग तक सदेहोत्थान या 'एशेन्शन बोडीली' की संज्ञा दी है। हालांकि सदेहोत्थान की प्रक्रिया को उनका कोई संतोषजनक उत्तर दे पाना कठिन हो गया है। इसका एक कारण तो यह है

कि प्रारम्भिक ईसाइयत को आत्मा का आवागमन एवं पुनर्जन्म सिद्धान्त स्वीकार्य नहीं था। उन्हें आशा थी कि जीसस फिर धरती पर वापस आऐंगे। वे इस प्रकार तर्क करने लगे क्योंकि जीसस स्वर्ग को सदेह गए हैं। अतः वे सदेह ही पुनः पृथ्वी पर वापिस आऐंगे। इसलिये उन्होंने आत्मा के आवागमन के सिद्धान्त को अमान्य कर दिया। ऐसा न मानना इसलिये भी आवश्यक था क्योंकि इन्हें आशा थी कि जीसस पुनः सदेह आऐंगे ताकि उनकी दूसरी भविष्यवाणी भी सच्ची सिद्ध हो सके कि जीसस पुनः सदेह आऐंगे। इसलिये आत्मा के आवागमन के सिद्धान्त को मानने की अपेक्षा उन्होंने जीसस के सदेह उत्थान और वापिसी के सिद्धान्त पर अड़े रहना ही ज्यादा उचित समझा जबकि जीसस का सदेहउत्थान और स्वर्ग से सदेह वापिसी दोनों ही अवधारणाऐं अब अवैज्ञानिक एवं काल्पनिक सिद्ध हो चुकी है।

इस्लाम में पुनर्जन्म अमान्य

इस्लाम भी पुनर्जन्म को नहीं मानता है। परन्तु वह उसे 'क़ियामत' के साथ जोड़ता है जिस दिन मुसलमानों व काफ़िरों को उनका कर्मफल बताया जाएगा। "क़ियामत" का अर्थ है वह निश्चित दिन जब समस्त मृत प्राणी पुनः जीवित होकर उठकर खड़े हो जाऐंगे'(करीमुल्लुगात, देवप्रकाश पृ. 1 कयामत, जन्नत, दोज़ख)। कुरान मजीद (पृ. 85-88) के अनुसार "क़ियामत में कर्म पत्र सबके सामने होगा जिसमें हर छोटी बड़ी बात लिखी होगी।" (कु. म. 18.49)। "क़ियामत के दिन कर्म तोले जाऐंगे" (कु. म. 7.7-9)। "मनुष्य जो कुछ करता है, अल्लाह के फ़रिश्ते लिखते जाते हैं यही क़ियामत में उसके सामने पेश होगा।" (कु. म. 45.28-29)। "मरने के बाद से लेकर क़ियामत तक काफ़िरों को जहन्नम सुबह और शाम दिखाया जाता है" (कु. म. 40.46)। "काफ़िरों के कर्म अकारथ जाऐंगे।" (कु. म. 18. 104-106)

पर वह क़ियामत कैसी होगी? तब क्या होगा? कुरान हमें बताती है कि "क़ियामत के दिन 'सूर' (शंख ले.) फूका जाएगा और अपराधी जमा होंगे। उनकी आंखे पथराई होंगी" (कु. म. 20.102-112)। "सूर फूंका जाएगा तो सब अपनी कबरों से निकल पड़ेंगे" (कु. म. 36.51-52)। "क़ियामत के दिन अल्लाह मुरदों को उठाएगा, फिर उसी की ओर लौटकर आऐंगे" (कु. म. 6.36)। "क़ियामत के दिन पहाड़ हट जाऐंगे, जमीन साफ़ मैदान होगी और एक-एक आदमी जमा कर लिया जाएगा" (कु. म. 18.47-48)। "जब सूर फूंका जाएगा तो सब बेहोश हो जाऐंगे और दुबारा 'सूर' पर उठ खड़े होंगे"(कु. म. 39.68-70)। "आदमी मरने के बाद से लेकर क़ियामत तक इच्छा के बावजूद वापिस नहीं आ सकता (कु. म. 23.100)। "मुरदे कबरों से उठाए जाऐंगे और दिलों के भेद जाहिर हो जाऐंगे" (कु. म. 100.9-10)। कियामत पर विश्वास करना हर मुसलमान का फर्ज है "बाला वफादारी उनकी वफादारी है जो अल्लाह पर, अन्ति दिन, पर फरिश्तों पर किताब पर और नबियों पर ईमान लाऐं" (कु. म. 2.177, पृ. 154)।

क़ियामत कब आएगी पूछे जाने पर मौहम्मद साहब ने जो कहा, कुरान के अनुसार यह है कि "वे तुमसे उस घड़ी (कियामत) के बारे में पूछते हैं कि कब आएगी? कहो। इसका ज्ञान तो मेरे 'रब' ही को है। उसे उसके समय पर सिवाय उसके कोई जाहिर नहीं करेगा"। "वह तुम पर अचानक आ जाएगी" (कु. म. 7. 18.7, पृ. 342)।

अतः इस्लाम में गढ़े हुए मुरदों को उठने की कोई निश्चित तिथि खुदा के अलावा किसी को मालूम नहीं है। अतः प्रत्येक मुसलमान का जीवन चक्र उसके शरीर के अन्त के साथ ही समाप्त हो जाता है।

किसी व्यक्ति का हिन्दू, मुसलमान और ईसाई होना इस बात पर ज्यादा निर्भर करता है कि वह मनुष्य के मरने के बाद आत्मा का ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध मानता है। आम तौर पर यह मान्यता है कि मुसलमान मरने के बाद और कयामत के दिन के फैसले के अनुसार जन्नत या दोज़ख में जाऐगा। ईसाई गढ़ा रहेगा या जी उठेगा। जैसे जीसस जी उठा था और हिन्दू का पुनर्जन्म होगा। क्या इसका यह अर्थ समझा जाए कि हर जन्म लेने वाला हिन्दू है? क्योंकि नवीनतम शोधों से सिद्ध हो चुका है कि मुसलमान व ईसाई परिवारों के लोगों के पुनर्जन्म के उदाहरण मिले हैं।

कुछ लोग बौद्ध-मत को नास्तिकवादी कहते हैं लेकिन बौद्ध मत आस्तिकवाद-नास्तिकवाद के पचड़े में नहीं पड़ता है क्योंकि महात्मा बुद्ध ने न कभी ईश्वर को माना और न अस्वीकार ही किया। लेकिन बुद्ध ने जन्म, मृत्यु व पुनर्जन्म के सिद्धान्त को माना है। इसलिये बौद्ध भी हिन्दू है। बुद्ध ने चरित्र निर्माण, समाज सुधार एवं समतावादी समाज व्यवस्था पर अधिक बल दिया था। इसी प्रकार सिख भी आत्मा के आवागमन और पुनर्जन्म की अवधारणा को मानते है। इस कारण सिख भी हिन्दू है। इस विषय में जैनी भी भिन्न नहीं है और वे भी हिन्दू हैं। इसीलिये भारतीय संविधान में बौद्ध, जैन व सिख को हिन्दू ही माना गया है।

अतः हिन्दू धर्म उन सभी लोगों को हिन्दू मानता है जो आत्मा के आवागमन तथा जन्म-मृत्यु व पुनर्जन्म के चक्र में विश्वास रखते हैं। भले ही उनकी पूजा, अर्चना एवं उपासना विधि में अन्तर हो। इस प्रकार बौद्ध, जैनी, सिख, कबीर पंथी, दादू पंथी, रामकृष्णाइटी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, सनातन धर्मी, शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सभी हिन्दू हैं।

7

शव विसर्जन

हिन्दू धर्म के अनेकों धार्मिक कृत्य एवं कर्म काण्ड, इस्लाम व ईसाइयत मतों से काफ़ी भिन्न हैं। हिन्दुओं में शव दाह संस्कार भी एक ऐसा ही महत्त्वपूर्ण धार्मिक कृत्य है जो हिन्दुओं को इस्लाम व ईसाइयत के अनुयायियों से पृथक करता है। यहाँ तक कि आज विश्व में शव दाह को एक हिन्दू धार्मिक कर्मकाण्ड के रूप में माना जाता है। भगवत गीता (2.27) के अनुसार **'जो जन्मा है उसकी मृत्यु निश्चित है'** और विभिन्न मतों के लोग चाहे वे हिन्दू धर्म के इस अटल सत्य को माने या न माने, परन्तु ऐसा हर प्राणी के साथ होता है। अतः मनुष्य के मरने के बाद शव का क्या करें? यह प्रश्न उभरा।

प्राचीन काल में मानव समुदायों की जीवन पद्धति विभिन्न वर्गों के बुजुर्गों के आदेशानुसार नियमित होती थी और ये बुजुर्ग सभी मानवीय समस्याओं का जो भी निदान देते थे, वह उस वर्ग के सभी समुदायों को मान्य होता था और वह प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चली आने के कारण परम्परागत रीति तथा धार्मिक कृत्य बन जाता था। अत्यन्त प्रारम्भिक काल में कुछ वर्गों के लोग शव खाते भी थे। दूसरे वर्ग के कुछ लोगों ने जानवरों को अपना भोजन (मांस आदि) को छिपाने के उद्देश्य से जमीन में गाड़ते देखा तो बुजर्गों ने अपने समुदाय के लोगो को शव को गाढ़ने का आदेश दे दिया। उन्होंने सोचा कि शव को गाढ़ना ही इस समस्या का एक मात्र हल है और लोग अपने शवों को छिपाने के उद्देश्य से गाढ़ने लगे।

फिर समाज के बुजुर्गों ने इस समस्या पर विचार करना प्रारम्भ किया कि गाढ़ने के बाद शव का क्या होता है? उन्होंने अपने सीधे-सादे अनुयायियों को बताया कि इस शव का एक अन्तिम दिन आएगा और उस दिन मृत फिर अपने कब्र से उठ जाऐंगे। इस पर लोगों ने शंका की कि उन लोगों का क्या हुआ जो आखिरी दिन अपनी कबरों से उठे थे? दुनियादारी में चतुर उन बुजुर्गों ने अपने ईसाई अनुयायियों को समझाया कि वे भी जो अपनी कबरों से उठे थे, जीसस की तरह सीधे स्वर्ग चले गये और ईश्वर के साथ स्वर्ग में रहते हैं, जहाँ ईश्वर रहता है।

ईसा पूर्व 298 से मिश्र के लोगों ने अपने राजाओं (फारोहाओं) एवं रानियों

के शवों को सुरक्षित रखने की सोची। उन्हें यह भी विश्वास था कि उनके मृत राजा को अपने सेवकों की सेवाओं की भी आवश्यकता होगी। इसलिये उन्होंने राजाओं के शवों के साथ उनकें सेवकों की छोटी-छोटी प्रतिमाऐं और राजा के लिए विभिन्न प्रकार के भोजन भी गाढ़ दिए। मिश्रवासियों के अपने मृतकों को गाढ़ने के प्रमाण हेरोडोटस (ईसा पूर्व 484 से 424 तक) के कथनों में मिलते हैं, जो उसने मिश्र में देखा। प्राचीन रोमन निवासी भी अपने मृतकों के शवों को गाढ़ते थे। ऐसा रोमन विधि-विधान की लगभग सभी पुस्तकों में मिलता है।

इस्लाम में शव विसर्जन

इस्लाम में शव का विसर्जन गाढ़कर किया जाता है तथा गाढ़ते समय कहते हैं कि 'उसी ज़मीन से हमने तुम्हें पैदा किया, और उसी में हम तुम्हें लौटा रहे हैं तथा उसी से हम तुम्हें दुबारा उठायेंगे' (आदाबे जिन्दगी-मु.युसुफ इस्लाही, पृ. 1.14)। "अल्लाह ने पहली बार पैदा किया, वही तुम्हें दुबारा जिन्दा करेगा" (कु. म. 30.10, पृ. 87)। 'मगर कब? यह खुदा ही जानता है' (कु. म. 7.187, पृ. 342)। अतः मुसलमान अपने आत्मीय जनों के शवों को इस आशा से गाढ़ते चले आ रहें हैं कि क़ियामत के दिन जो कभी भी हो, उनमें से कुछ को जन्नत मिलने की काफ़ी सम्भावना है।

ईसाइयत में शव विसर्जन

बाईबल के अनेकों प्रमाणों से सिद्ध होता है कि यहूदी और ईसाई दोनों ही अपने मृतकों को गाढ़ते थे। जैसे- 'ईसा की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र ऐसो और जैकब ने उसे गाढ़ दिया'' (उत्पत्ति 36.19)। "अब्राहम ने अपनी पत्नी सराहा को गाढ़ दिया'' (उत्पत्ति 33.19)। "लोग अपने मृतकों को गाढ़ें (माउंट 8.22) "ईसाइयों में जीसस का गाढ़ना सबसे महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि जीसस को क्रॉस से निकाल कर गाढ़ा गया था।'' (दी रिसरेक्शन ऑफ जीसस क्राइस्ट, रिचर्ड डब्लू डैकिन्सन)। अतः इस्लाम और ईसाइयत में शव को गाढ़ने की मान्यता है।

ईसाइयत [illegible]

ईसाइयत में [illegible] चमत्कारों की भी कमी नहीं है। [illegible] ने अपनी 1904 में [illegible] 'मारटायर्स एण्ड सेन्ट्स ऑफ [illegible]

सेन्चुरीज' में लिखा है **"और आखिर में सेन्ट क्लोन्ट** (ईसा बाद 100) **को गले में लंगर डालकर समुद्र में फेंक दिया गया ताकि कोई महत्वपूर्ण अवशेष अपने अनुयायियों को पूजने के लिये न बचे।** लेकिन ईसाइयों ने प्रार्थना की कि शहीद विशप का शव उन्हें मिल जाए और यकायक समुद्र तीन मील पीछे हट गया और उस सन्त का पार्थिव शरीर एक सुन्दर सफेद संगमरमर के देहावशेष पेटिका में मिल गया जिसे देव दूतों ने समुद्र के नीचे बनाया था'' क्योंकि स्वयं देवदूतों ने ईसाई संत के लिये संगमरमर की देहावशेष पेटिका बनाई थी इसलिए सब को शव गाढ़ने की प्रक्रिया को स्वतः ही धार्मिक स्वीकृति मिल गई।

दी सेवेन्थ डे एडवेंटिस्ट मिशन इन इंडिया, पूने से प्रकाशित पत्राचार पाठ नं0 3 में स्पष्ट लिखा है कि **"ईसाइयत धर्मान्तरण में विश्वास रखती है जो ईसाई जीवन की अनुभूति के लिए तीन महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर ज़ोर देती है – मृत्यु, गाढ़ना और रिसरेक्शन यानी सदेहोत्थान"**। इससे स्पष्ट है कि सदेहोत्थान तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक कि शरीर न हो और जब तक पहले शव गाढ़ा न गया हो, तक तक वहाँ शरीर नहीं हो सकता है। अतः सदेहोत्थान द्वारा स्वर्ग जाने के लिए शव का गाढ़ना अनिवार्य है।

संदेहवादी का शव दाह

साथ ही ईसाइयत संदेहवादी ईसाई (हेरेटिक) के शव को गाढ़ना मना करती है। इसी तरह किसी ईसाई के शव को अन्य प्रकार से विसर्जन करना ईश्वर (ईसाई) द्वारा अभिशापित माना गया है। यहाँ तक कि यदि किसी मृत ईसाई के विभिन्न अंगों को अलग-अलग गाढ़ा जाए वह भी गैर-धार्मिक ईसाई विधि है। परिणामस्वरूप ऐसे व्यक्ति का सदेहोत्थान असम्भव है। इसी प्रकार आग लगने तथा अन्य कारणों के परिणामस्वरूप शरीर क्षत विक्षत होने पर भी सदेहोत्थान सम्भव नहीं हैं, क्योंकि यदि शरीर पूरा नहीं, तो उत्थान भी नहीं। अतः ईसाइयत में उन्हीं लोगों के शरीर को जलाया गया जो सदेहोत्थान के अयोग्य समझे गए थे, क्योंकि ईसाई मत में अविश्वासी और सन्देहवादी दोनों ही सदेहोत्थान के योग्य नहीं माने गए हैं।

इस कठोर व्यवस्था का दोहरा उद्देश्य था। एक तो ऐसे व्यक्ति को ईसाई मत अविश्वासी होने की सज़ा देना था और इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण उनको चर्च की दृष्टि में सदेहोत्थान के लिये अयोग्य बना देना था। अतः जिस किसी ने भी ईसाई-सिद्धान्तों में सन्देह किया अथवा ईसाइयत की गैर-परम्परागत परिभाषा की तो वह हेरिटिक यानी ईसाइयत-अविश्वासी हो गया यानी वह जीवित जलाने योग्य

है। ऐसे लोग मरणोपरान्त सदेहोत्थानित नहीं किए जा सकते हैं। ऐसा ही कुछ जोन बाई क्लिफ के साथ हुआ, जब वह मरा उसका अपराध यही था कि उसने चौथी शताब्दी की लैटिन (बलगैर) भाषा की बाइबिल का अंग्रेजी में अनुवाद किया। 31 दिसम्बर, 1384, को उसका पक्षपात से देहान्त हो गया। हालांकि उसे अविश्वासी घोषित कर दिया गया था, मगर उसके शव को पहले तो गाढ़ दिया गया, लेकिन शीघ्र ही जब चर्च को अपनी भूल का पता चला बाईक्लिफ के गढ़े हुए शव को निकालकर जला दिया गया क्योंकि चर्च के अनुसार वह सदेहोत्थान का अधिकारी नहीं था।

हेरेटिक को जलाने सम्बन्धी विधान 'डी हारेटिको कोम्बुरेन्डो' चौथे हैनरी के राज्य के दूसरे वर्ष में स्वीकृत किया गया था। इस नियम के अनुसार सिविल और धार्मिक सभी प्रकार के हेरेटिक अधिकारियों को सजा देने की व्यवस्था है। इसमें मजिस्ट्रेट खुद जनता के सामने उस व्यक्ति के शव को जलाएगा ताकि अन्य व्यक्तियों को भी भयभीत किया जा सके और कोई ऐसा दुष्ट व्यक्ति उन सिद्धान्तों का लेखक या समर्थक आदि राज्य भर में बचने न पाऐ (स्टेटू-2, हैनिरी चौथा)।

केवल ईसाई राज्य ही नहीं जिसने किसी हेरेटिक को जलाने के लिये कानूनी स्वरुप दिया है बल्कि रोमन कैथोलिक चर्च ने भी ऐसे सैकड़ों लोगों को जलाया जो हेरेटिक थे। कुस्तुंतुनिया में 6 जुलाई 1415 को हस नामक व्यक्ति को हेरेटीय कार्य के लिये जिन्दा जला दिया गया और इसके बाद प्राग में उसके मित्र जिरोमी को भी इसी अपराध के लिए यही सज़ा दी गई। फिर 1906 में वेटिकन के पोप ने घोषणा की कि **शव दाह रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के सिद्धान्त के विरुद्ध है और जो शव दाह करेगा या इसमें शामिल होगा वह सामाजिक रूप से अपराधी होगा।** अतः शव दाह एक गैर-ईसाई कृत्य है, तथा शव का गाढ़ना ही एक ईसाई धार्मिक कृत्य है चाहे यह धारणा कितनी ही अवेज्ञानिक और समय के साथ अव्यावहारिक क्यों न हो? ईसाई अपने मृतको को इस आशा और विश्वास के आधार पर गाढ़ते चले आ रहे हैं कि आखिरी दिन मृतक पुनर्जीवित हो उठेगा और उसका उत्थान होकर वह स्वर्ग चला जाएगा। **परन्तु गाढ़ने के बाद किसी मुसलमान या ईसाई के शव के पुनर्जीवित होने का विश्व भर में आज तक एक भी प्रमाण नहीं मिला है** और न मिलने की आशा ही है क्योंकि इस्लाम व ईसाइयत की यह अवधारणा पूर्णतया अवैज्ञानिक, प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध एवं बुद्धि संगत नहीं है।

हिन्दुओं में शव विसर्जन

हिन्दू धर्म शास्त्रों में शव का चार प्रकार से विसर्जन करने का उल्लेख मिलता है

(अथर्व. 8.2.3-4)। जैसेः- (1) गाढ़ना, (2) जलप्रवाह करना, (3) शव को किसी ऊँचे स्थान पर रख देना, जहाँ गिद्ध आदि पक्षी पहुँच सकें। इस विधि को पारसियों ने अपनाया हुआ है और (4) शव का दाह करना। हिन्दुओं के पूर्वज वैदिक धर्मी आर्यों ने शवों को गाढ़ने की विधि को अस्वीकार किया था। तथा अन्य तीन विधियों में से शव दाह को अपनाया। वेदों (ऋ. 10.14.7, 10.16.1-5, 10.68.8) में शवदाह संस्कार का विस्तृत उल्लेख है। अब प्रश्न उठता है कि हिन्दुओं ने शवदाह को ही क्यों अपनाया? इसका उत्तर भी यजुर्वेद के (40.13) के **'भस्मान्तं शरीरम्'** में सुस्पष्ट है कि 'मृतक का शरीर भस्म करने योग्य है''। जब कोई हिन्दू मरता है तो कहा जाता है कि उसका देहान्त हो गया यानी उसकी देह का अन्त हो गया है क्योंकि प्रत्येक हिन्दू भलीभांति जानता है कि मानव शरीर नाश्वान है, मरणशील है। अतः शव को संभाल कर रखने का कोई औचित्य नहीं है। और शव का दाह द्वारा विसर्जन करना ही सर्वथा उचित विधि है। हिन्दुओं ने विभिन्न विधियों में से शवदाह को ही क्यों अपनाया? इसके कई अन्य कारण भी हैं।

1. हिन्दुओं ने शव विसर्जन को मनुष्य के अन्य उपयोगी संस्कारों की भांति इसे भी जीवन का अन्तिम संस्कार माना है। संस्कार का भाव है, अशुद्ध को शुद्ध करना एवं अपवित्र का पवित्र करना क्योंकि हिन्दुओं का विश्वास है कि मरने के बाद शरीर अपवित्र हो जाता है और अग्नि पवित्र कारक है। अतः जैसे जलाने पर गन्दी धातुओं की अशुद्धि दूर हो जाती है उसी प्रकार मृतक के शव को जलाना उसे पवित्र करने के समान है।
2. पर्यावरण विज्ञान के आधुनिकतम सिद्धान्त के अनुसार भी बाहरी कचरा, सड़ने वाली वस्तुओं तथा अनेकों औद्योगिकीय अनुपयोगी पदार्थों का जलाना आवश्यक है, जो कि ऐसे पदार्थों के विसर्जन की सर्वोत्तम विधि है। आज अनेकों प्रदूषणकारी एवं व्यर्थ पदार्थ जला दिए जाते हैं।
3. हिन्दुओं का विश्वास है कि मानव शरीर पांच तत्त्वों से मिलकर बना है और शव को जलाने से वे पांचों पदार्थ जलकर पुनः अपने-अपने मूलभूत तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार मानव सम्बन्धी ब्रह्माण्ड का तात्त्विक चक्र अनवरत रूप से चलता रहता है जो कि तात्त्विक संतुलन को बनाये रखता है। अतः शवदाह तात्त्विक चक्र सन्तुलन बनाए रखने की वैज्ञानिक विधि है।
4. शव को गाढ़ने की अपेक्षा, उसके दहन करने से पर्यावरण दूषित होने से बचता है। क्योंकि सड़ने वाले पदार्थ या शव का पर्यावरण पर बुरा प्रभाव तो पड़ता ही है और यदि मृतक किसी संक्रामक रोग से पीड़ित है तो गाड़ने पर भूमि में विषैले जीवाणुओं की मात्रा और ज्यादा बढ़ेगी। इस सड़ने की प्रक्रिया से जीवाणुओं की मात्रा और विघटित पदार्थों की मात्रा आस-पास की भूमि तथा उसके नीचे का अधोगत जल भी अन्तः प्रवाह से दूषित हो जाएगा तथा उस पानी को पीने से लोग रोगी होंगे। क्योंकि पानी की सतह जो कब्रिस्तान से नीचे की भूमि से अन्य क्षेत्रों तक मिली रहती है।
5. शव को गाढ़ने की अपेक्षा शव दाह के लिये बहुत कम भूमि की आवश्यकता होती है। यदि ईसाइयत और इस्लाम की मूलभावनाओं के अनुसार प्रत्येक शव को अलग-अलग जगह में गाढ़ा जाये तो बढ़ती हुई आबादी के साथ इस कार्य के लिए भूमि की आवश्यकता और अधिक बढ़ती जाएगी। इसके फलस्वरुप नगरों की आबादी के क्षेत्रों के पास की उपजाऊ जमीन कम होती जाएगी, जबकि बढ़ती हुई आबादी के भरण-पोषण के लिये और अधिक अन्न तथा उपयोगी भूमि की आवश्यकता होगी।

नास्तिक विद्वान चरक ने भी माना है कि शवदाह सर्वोत्तम विधि है। इन सब दृष्टियों से हिन्दुओं ने शवदाह विधि को अपनाया है। यह विधि पूर्णतया तर्कसंगत, भूमि की बचतकारी, व्यावहारिक, पर्यावरण सुरक्षाकारी और स्वास्थ्य विज्ञान के अनुकूल होने के कारण सर्वश्रेष्ठ है। आज शव दाह विधि अपनी वैज्ञानिकता एवं व्यावहारिकता के कारण अहिन्दुओं में भी लोकप्रिय एवं व्यापक हो गई है तथा इसे हिन्दू धार्मिक कृत्यों के रूप में जाना जाता है।

शवदाह की प्राचीनता

हिन्दुओं में शवदाह की प्रथा उतनी ही पुरानी है जितने कि वेद, क्योंकि दाह संस्कार की क्रिया वेदों के अनेकों मंत्रों के उच्चारण के साथ की जाती थी तथा गौतम सूत्र, मनु याज्ञवलक्य, एवं पराशर स्मृतियों, ब्रह्म एवं गरुड़ पुराण में इस विधि का विस्तृत वर्णन है, जिससे सिद्ध होता है कि हिन्दुओं के पूर्वज आर्य शव दाह किया करते थे। रामायण (अयो. 76.16-20) में राजा दशरथ के शवदाह का वर्णन है। जब गौतम बुद्ध का देहावसान हुआ तो नागद्वार से उनका शव दाह संस्कार के लिये ले जाया गया। महाभारत के अनुसार पाण्डु, धृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, भीष्म, वासुदेव आदि के निधन के बाद उनका दाह संस्कार किया गया। (हिन्दू धर्म शास्त्रों का इतिहास, भाग-3, पृ. 132-133)। अलेकजेन्डर (ईसा पू. 325) द्वारा ले जाए गए एक हिन्दू दार्शनिक के निधन पर उसके दाह संस्कार का प्रमाण प्लूटार्चलाइन्स नामक ग्रन्थ में

मिलता है। मोहनजोदडों और हडप्पा सभ्यताओं के अवशेषों की खुदाई में भी किसी प्रकार के मानव कंकाल एवं अस्थियों तथा किसी भी कब्र का न पाया जाना इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हिन्दू अपने मृतकों को गाढ़ते नहीं थे। ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय लंदन के प्रोफेसर ए.ए. मैक्डोनल ने अपनी पुस्तक 'हिम्स आफ ऋग्वेद' में लिखा है कि "हिन्दुओं के पूर्वज दाह संस्कार ही करते थे"। डॉ. रामगोपाल ने अपने 'इंडिया ऑफ वैदिक कल्प सूत्राज' में लिखा है कि 'प्राचीन हिन्दू अपने मृतकों को जलाते थे।''

अहिन्दू मतों में शव दाह

अनेकों ईसाई एवं अन्य मतों के विद्वानों ने भी अग्नि को पावन कारक तथा शवदाह को वैज्ञानिक क्रिया माना है। कुछ समय पूर्व दिल्ली से प्रकाशित एव दैनिक पत्र में एक पाठक ने लिखा "शव दाह केवल हिन्दुओं का ही कोई विशेष धार्मिक कृत्य नहीं है क्योंकि शवदाह विश्व के विभिन्न आस्तिक व नास्तिक मतों के अनुयायियों में भी किया जाता है। अन्य अनेकों में से सुप्रसिद्ध लेखक बर्नाड शा और एनूरिन बेबिन के शवों का दाह किया गया था और कैम्ब्रिज में ही दो विद्युत शवदाह हैं और कुछ ईसाई पादरियों का शव भी दाह किया गया है" (हिन्दु. टा. 18.6.1984)। मास्को में सबसे बड़ा विद्युत शवदाहगृह है जिसमें सात भट्टियाँ है। यह विचार स्वागत योग्य है कि विभिन्न मतानुयायियों ने भले ही व्यक्तिगत रूप में ही सही, शवदाह को अपनाया है। मगर हिन्दुओं ने न पहले कभी कहा और न आज ही कहते है कि अन्य मतालम्बियों को शवदाह नहीं करना चाहिए। और यदि वे करते हैं तो इसमें किसी हिन्दू को आपत्ति नहीं होना चाहिए यदि गैर-हिन्दू, हिन्दू धर्म की किसी रीति को अच्छा पाते हैं और अपनाते हैं तो वे इसे अपनाने में स्वतन्त्र है और वे शवदाह क्रिया को अपने धार्मिक कृत्यों में शामिल कर सकते हैं।

गैर-हिन्दू शव दाह क्यों अपना रहे हैं? उसका उत्तर साफ है, क्योंकि आज की दुनिया के लोग प्राचीन अंधकार युग में नहीं रह रहे हैं। अब सारे विश्व में विचारों का आदान प्रदान तीव्र गति से हो रहा है तथा उन्हें तर्क बुद्धि एवं वैज्ञानिकता के दृष्टिकोण से परखा जा रहा है। आज लोग पूर्वाग्रहों से इतने ग्रसित नहीं है जितने कि छठी-सातवीं सदी में थे जब तक कि कोई अनभिज्ञ, कट्टरवादी व धर्मान्ध ही न हो। आज लोग अच्छी तरह जानते हैं कि निश्चित क्षेत्रफल की पृथ्वी की उपयोगिता, भूमि की बढ़ती हुई आबादी के लिये छोटी पड़ती जा रही है। अतः उसे शवों से पाटकर और छोटी करने में बुद्धिमानी नहीं है और फिर जिन विभिन्न धार्मिक

मान्यताओं के लिए ईसाई व मुसलमानों ने शवों को गाढ़ना प्रचारित किया था वे मान्यताऐं ही आज संदेह रहित नहीं रही है। अतः जिन्होंने अपनी मृत्यु के बाद अपने शव की दाह क्रिया की इच्छा व्यक्त की वे मानसिक दृष्टि से जाग्रत व्यक्ति थे और अपने धर्म की अवैज्ञानिक मान्यताओं से अत्यन्त दुखित थे। हालांकि उनके शव को दाह संस्कार के बाद भी वे उसी रिलीजन के अनुयायी माने जाऐंगे। लेकिन कट्टरपंथी धार्मिक दृष्टि में उनका यह कृत्य गैर-ईसाई या गैर-इस्लामी अवश्य समझा जाएगा एवं समझा भी गया है।

शव दाह हिन्दुओं का धार्मिक कृत्य है। मगर वे अन्यों को इसे अपनाने से मना नहीं करते है जैसे अंग्रेजी, अंग्रेजों की भाषा है। लेकिन आज विश्व में यह अंग्रेजों से ज्यादा अन्य लोगों द्वारा बोली जाती है। इसका तो यह अर्थ नहीं कि अंग्रेजी, अंग्रेजों की भाषा नहीं रही या इसे अधिक लोग प्रयोग करते हैं तो कोई इसकों अंग्रेजों के मूल अधिकार से मुक्त कर लेगा। इसी प्रकार हिन्दुओं की शव दाह विधि को कोई अन्य मतावलम्बी अपना संस्कार नहीं कह सकता है सिर्फ इसलिये कि गैर-हिन्दुओं ने मृत्यु के पश्चात अपने शव का दाह संस्कार करने की इच्छा व्यक्त की है। भले ही हिन्दुओं की शव दाह क्रिया को गैर-हिन्दुओं ने धार्मिक मान्यता नहीं दी है परन्तु प्रगतिशील एवं स्वतन्त्र चिंतकों में हिन्दू संस्कारों के प्रति एक क्रमिक बदलाव के लक्षण अवश्य दिखाई दे रहे हैं। हालांकि हिन्दू जीवन पद्धति अपनाने में अभी भी उन्हें अपने पूर्वाग्रहों के कारण अरुचि प्रतीत होती है।

अनेक गैर-हिन्दुओं के मन में यह दुविधा है कि कहीं शव दाह अपनाने से वे हिन्दू ही न समझ लिए जाऐं। वे अपनी धार्मिक परम्पराओं से भयभीत हैं। उनके भ्रम निवरणार्थ यहाँ स्पष्ट कर देना उचित होगा कि किसी गैर-हिन्दू के अपने परिवारी जन के शवदाह मात्र से वह हिन्दू नहीं हो सकता जब तक कि वह आत्मा के आवागमन के सिद्धान्त को न माने। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जब आपत्ति काल में जैसे भूकम्प, बाढ़, समुद्री-तूफान, ज्वालामुखी, एवं युद्ध में सैकड़ों गैर-हिन्दू जला दिए गये। मगर वे कोई भी हिन्दू नहीं माने गए। द्वितीय विश्व युद्ध के समय लगभग पाँच लाख यहूदी, ईसाई, जिन्दा या मुर्दा गैस चेम्बरों या विद्युत शव दाह गृह में जला दिए गए। मगर कोई भी हिन्दू नहीं माना गया चाहे भले ही उन्हें अभिशापित समझा जाए। यह अलग प्रश्न है। यदि बर्नाड शॉ और एनूरिन बेविन जैसे लोगों ने शवदाह की इच्छा व्यक्त की थी तो इससे यही बात सिद्ध होती है कि उन्होंने ईसाई होते हुए भी मृत्यु के बाद गाढ़ना और उसके बाद रिसरेक्शन के सिद्धान्त को नकारा है।

यह निश्चित है कि ईसाइयत सिद्धान्त रूप में शवदाह को एक गैर-ईसाई

क्रिया मानता है। भारत में जब राजकुमारी अमृत कौर की इच्छानुसार उनका दाह संस्कार किया गया तो इसका विवरण रेव. जे. एम. मिकेलवी ने एक कैथोलिक पत्रिका (2.4.1964) में इस प्रकार लिखा। "उसका पिता ईसाई हो गया . . . अनेकों ने दुख के साथ पढ़ा कि अमृत कौर ऐसा आदेश छोड़ गई है कि मृत्यु के बाद उसके पिता और भाइयों के समान उसका भी दाह संस्कार किया जाए"। श्रीमती कौर के शवदाह से अनेकों दुखी क्यों? क्योंकि उन्होंने ईसाइयत द्वारा दाह संस्कार की मनाही को नहीं माना और बिना हिन्दू धर्म में धर्मान्तरण हुए हिन्दू कृत्य को अपनाया था। यहाँ भी राजकुमारी ने मरणोपरान्त शव दाह की इच्छा व्यक्त कर ईसाइयत की सदेहोत्थान एवं स्वर्ग पाने के सिद्धान्त को भी अस्वीकार किया था क्योंकि स्वर्ग की चाह न करने वाला कोई ईसाई मुश्किल से ही होता है, और उसके अस्वीकार करने में एक ईसाई जीसस के सदेहोत्थान के सिद्धान्त की अवमानना करता है, तथा इस तरह जीसस के दैवी पुरुष मानने से भी इन्कार करता है। सैन्टपाल ने कहा कि "**यदि किसी मृतक को सदेह उठाया नहीं जाता है तो जीसस का भी सदेहोत्थान नहीं होता है**"। (दी हिन्दू पृ. 40) यदि कोई ईसाई अपनी समझ, बुद्धि, विवेक, ज्ञान तथा तर्क से ईसाइयत को सुधारना चाहता है तो वह कुछ भी पाले, मगर ईसाइयत नहीं पाएगा।

इस्लाम में भी यही हाल है। मुसलमानों ने सुविख्यात उर्दू लेखिका इस्मत चुगताई को आजीवन असीम सम्मान दिया। लेकिन उसने मरणोपरान्त अपने शव को जलाने की इच्छा व्यक्त की क्योंकि इस्लाम में शवदाह अमान्य है। इसलिये इस्मत चुगताई के सभी मुस्लिम प्रशंसकों – जैसे शबाना आजमी आदि, जो अपने को महान प्रगतिशील एवं सेक्यूलरवादी कहती हैं, श्रीमति चुगताई के दाह संस्कार में शामिल नहीं हुई।

इससे स्पष्ट है कि ईसाइयत और इस्लाम में शव दाह क्रिया अमान्य है और हिन्दू शव दाह को अपना धार्मिक कृत्य मानता है क्योंकि मरणोपरान्त शरीर भस्म करने योग्य है। अतः इसे जलाकर विसर्जित करना ही एक सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक विधि है। इसके विपरीत ईसाइयत में सदेहोत्थान एवं स्वर्ग जाने की अभिलाषा में गाढ़ने की अवधारणा अवैज्ञानिक सिद्ध हो चुकी है। इसी प्रकार इस्लाम की '**अनिश्चित कयामत के दिन**' की प्रतीक्षा में कब्रों में गढ़े रहना और कर्मफल के लिये प्रतीक्षा करने की अवधारणा तर्क संगत प्रतीत नहीं होती है।

8

अहिंसा

इस्लाम और अंहिसा

इस्लाम का प्रसार, भय, आतंक और तलवार से हुआ और इस्लाम के प्रसार के लिये हजरत मौहम्मद ने तलवार क्यों उठाई? इसका जवाब इस्लाम के विद्वान अबुल आला मौदूदी ने अपनी पुस्तक "अलजिहाद फिल इस्लाम" में इस प्रकार बताया है। "रसूलिल्लाह सल्लल्लाहो अलैहे वसल्लम तेरह वर्ष तक अरब वासियों को इस्लाम की ओर बुलाते रहे। उपदेश करने का जो भी प्रभावी ढंग हो सकता था उसे आपने अपनाया। प्रबल प्रमाण और प्रत्यक्ष तर्क उनके सम्मुख रखे। वाणी की मधुरता भाषा की भावुकता तथा ओजस्वी भाषणों द्वारा हृदयों को द्रवित करने का प्रयत्न किया। अल्लाह की ओर से अलौकिक चमत्कार दिखाए। अपने पवित्र जीवन चरित्र का श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत किया और कोई साधन ऐसा न छोड़ा जो सत्य को प्रत्यक्ष और प्रतिष्ठित करने में सहायक हो सकता था। आपकी कौम ने आपकी सच्चाई सूर्य की भांति प्रमाणित होने के पश्चात् भी आपके निमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया और इन्कार कर दिया। उपदेश और शिक्षा की असफलता के उपरान्त आपने हाथ में तलवार उठाई जिससे लोगों के दिलों से धीरे-धीरे बुराई और शरारत का जंग छूटने लगा। शरीर से हानिकारक तत्त्व स्वतः ही बाहर हो गये और आत्मा की संकीर्णता दूर हो गई। और केवल यही नहीं कि आंखों से अंधकार का पर्दा उठकर सत्य का प्रकाश पूरी तरह प्रगट हो गया बल्कि गर्दनों में अकड़ और मस्तिष्क का घमण्ड जो सत्य के उदयोपरान्त भी मानव को उसके झुकने से रोकता है, शेष न रहे"। पुनः "अरब की भांति इस्लाम दूसरे देशों में भी इस तेजी से फैला कि शताब्दी के अन्दर संसार का एक चौथाई भाग मुसलमान बन चुका था। इसका मूल कारण यही था कि '**इस्लाम की तरवार**' ने अंधकार के वे सारे आवरण छिन्न-भिन्न कर दिए जो दिलों पर पड़े हुए थे"। इसी प्रकार 'हुज-जुल किराम (पृ0 374) में लिखा है "**इस विजय के उपरान्त महंदी हिन्दुस्तान पर आक्रमण करेगा। हिन्दुस्तान के सम्राट की गर्दन में फंदा डालकर मंहदी के सामने उपस्थित किया जायेगा**

और सभी सरकारी खजाने और बैंक लूट लिये जायेंगे''। आगे पृ. 424 पर देखिये ''**ईसा भी महंदी की तरह तलवार से इस्लाम फैलायेगा, दो ही बातें होगी हत्या अथवा इस्लाम**'' (शान्ति का अवतार, पृ. 5 कादियान) किताब 'अहुवालुल आखिर' में लिखा है ''**जो ईसाई ईमान नहीं लायेंगे उन सब की हत्या कर दी जायेगी**''। विस्तार के लिए पढ़िये (रैथ ऑफ इस्लाम रौबर्ट ई. बर्न्स, 1994, होली वार इस्लाम फाईट्स – जोहन लाफिन)। इसीलिये भारत में इस्लाम के प्रसार के लिये तलवार का खुलकर प्रयोग हुआ। देखिये कुछ पुस्तकें (भारत में मुस्लिम सुलतान, पी. एन. ओक, भारतीय मुसलमानों के हिन्दू पूर्वज पुरुषोत्तम, इण्डियन मुस्लिम्स हू आर दे, डॉ. के. एस. लाल आदि) और शायद आगे भी इस्लाम का प्रसार जनसंख्या विस्फोट और जिहाद से होगा। काश भारतीय राजनीतिज्ञ जिहाद का स्वरुप अभी भी समझ लें। कश्मीर में जिहाद चल ही रहा है और पूर्वोत्तर प्रान्तों में भी आने वाला है। ये सब रिलीजनवाद की देन है। इसीलिये अनवर शेख ने 'इस्लाम को अरब राष्ट्रवाद का आन्दोलन' कहा जिसमें अरबी जीवन मूल्यों को गैर-अरबियों पर थोपने की बात कही है (इस्लाम-दी अरब नेशनल मूवमेंट, 1995)।

ईसाइयत और अंहिसा

ईसायइत में तो खुद शान्ति का देवता कहलाने वाला जीजस क्राइस्ट कहता है ''**मैं मिलाप कराने को नहीं, पर तलवार चलाने आया हूँ** (मत्ती 10.34) जिसका साक्षात् प्रमाण है – गोवा इन्क्वीज़ीशन। अर्थर फ्रेडरिक ईडे ने अपनी पुस्तक ''अन जिप्पड़ – दी पोप्सवेयर' के अन्तिम अध्याय में 590 से 1986 ई० तक के पोपों द्वारा असहिष्णुता व हिंसा का विस्तृत विवरण दिया है, जो पठनीय है। वस्तुतः ''रोम (ईसाइयत) **जब अल्पमत में होती है तो मेमने की तरह विनम्र, बराबर होने पर लोमड़ी की तरह चालाक और बहुमत में होने पर चीते की तरह आक्रामक होती है तथा नाश करने का प्रयास करती है**'' (जैक टी. चिक)। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में बहुमतीय ईसाइयत की यही स्थिति है।

महावीर बुद्ध और अहिंसा

वैदिक धर्म के अनुयायी हिन्दुओं को अहिंसा के उपदेश पर बल सबसे अधिक ईसा पूर्व छठी शताब्दी में भगवान महाबीर ने दिया। यह अहिंसा का प्रारम्भिक युग था। महाबीर और उनके अनुयायी शायद विश्वास करते हों कि यदि वे अपना मुँह ढंककर और नथुनों को पतले कपड़े से ढ़ककर पीने से पहले पानी को छान लें और चलने

से पहले पृथ्वी को साफ कर दें तो शायद वे अहिंसा का कोई बड़ा कार्य कर रहे हैं। वस्तुतः उन्होंने वही किया जो भगवान महाबीर ने उनसे कहा क्योंकि ऐसा करने से कुछ प्राणियों की रक्षा की जा सकता है। यह शायद उस युग की आवश्यकता रही होगी, जब यज्ञों में पशुबलि एक आम बात हो गई थी।

महात्मा बुद्ध ने महाबीर की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप देना चाहा। उन्होंने अपने अनुयायियों को सकारात्मक अहिंसा अपनाने को कहा। अहिंसा सम्बन्धी महात्मा बुद्ध के विचारों को डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इस प्रकार लिखा– ''*भगवान बुद्ध ने कहीं भी अहिंसा की परिभाषा नहीं की है। उन्होंने कहा सब से मैत्री करो ताकि तुम्हें किसी प्राणी को मारने की आवश्यकता न पड़े।* '**अहिंसा परमो धर्मः**'' *यह एक दूसरे सिरे पर पहुँचा हुआ सिद्धान्त है। यह एक जैन सिद्धान्त है। यह बौद्ध सिद्धान्त नहीं है। जहाँ जीव हत्या करने की आवश्यकता थी वहाँ उन्होंने जीव हत्या करना मना नहीं किया। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने इस बात का निर्णय व्यक्ति पर छोड़ दिया कि जीव हत्या की आवश्यकता है या नहीं* (बुद्ध और उनका धम्म, पृ. 164)। अतः स्पष्ट है कि बुद्ध ने कायरों वाली अहिंसा का उपदेश नहीं दिया था और न उनके लिये अहिंसा परमो धर्मः अक्षरशः मान्य था। वस्तुतः बुद्ध ने मानव के सर्वागीण विकास के लिये सम्यक ज्ञान का उपदेश दिया था। मगर बौद्धों ने भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को ठीक प्रकार से न समझ कर हर परिस्थिति में सहिष्णुता का पक्का पाठ याद कर लिया।

वैदिक धर्म के अनुयायियों को सही मार्ग दर्शन करने वालों के अभाव में विश्वास होने लगा कि वास्तव में अहिंसा परम धर्म है। जबकि सच्चाई यह है कि जिस रूप में अहिंसा का प्रचार भारत में हिन्दुओं के बीच किया गया वैसी अहिंसा न वेदों में है, और न महाबीर व बौद्ध की वाणी में है। वास्तव में अहिंसा वैदिक धर्म का कोई अभिन्न अंग नहीं है। वह मनु के धर्म के दश लक्षणों में भी नहीं है। परन्तु अनावश्यक तौर, पर मनुष्य तो क्या, पेड़-पौधे पशुओं, कीड़ों-मकोड़ों को भी सताना हिन्दू धर्म का अंग नहीं है। वेदों में न्यायोचित व्यवहार करने पर ही बल दिया गया है। मगर कोई व्यवहार तब तक न्यायपूर्ण नहीं है जब तक कि अधर्मी, अन्यायी व आततायी को उसके कुकृत्यों की उचित सजा नहीं दे दी जाए। इस विषय में हिन्दू धर्म के आचार्य हिन्दुओं के मार्गदर्शन के अपने कर्त्तव्य पालन करने में विफल रहे और वे धर्म में अहिंसा का समुचित स्थान न बता सके। वे सबल और निर्बल की अहिंसा में भेद नहीं कर सके। परिणामस्वरुप अहिंसा का भ्रामक अर्थ प्रचारित किया गया और हिन्दू लगातार भीरु और कायर होने लगा।

महात्मा गांधी की अहिंसा

जब मोहनदास करमचन्द गाँधी भारतीय राजनीति के क्षितिज पर आए तो उन्होंने हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तान की सभी समस्याओं का हल एक मात्र अहिंसा द्वारा बतलाया। उन्होंने अहिंसा को अंध श्रद्धा का आधार बनाया और यहाँ तक कहा कि **"यदि अफगानिस्तान की फौजें भारत पर हमला करती है तो वे उसका विरोध नहीं करेंगे"** (लीडर, 12 मई 1921)। इससे लोगों की उनके प्रति गद्दार होने की आशंका होने लगी। उन्होंने स्वयं को ही भारत के समस्त निवासियों के तुल्य समझा जैसे मानो गाँधी ही भारत हो। उनकी अहिंसा का राजनीति में प्रयोग का एक और उदाहरण देखिए **"मेरे अनुमान से सीमावर्ती मुसलमानों के सहयोग से सभी हिन्दू शासकों का एक संघ हैदराबाद के निजाम के अधीन बना दिया जाए तथा उन्हें भारत का राजा बना दिया जाए। ऐसा राज्य शत प्रतिशत घरेलू होगा। यह एक स्वशासित राज्य होगा"** (हरिजन, 13.10.1940)। उन्होंने अपने अहिंसा के दर्शन को बल देने के लिए एक और शब्द सत्याग्रह जोड़ा जिसे उन्होंने 'निष्क्रिय अवरोध' कहा। सावरकार के अनुसार **"गाँधी जी का यह सत्याग्रह तो किसी आक्रमणकारी को पीछे ढकेलने की जगह खुद पीछे हट जाने के समान था।** इस सत्याग्रह का उद्देश्य तो हन्ता, आक्रान्ता एवं उत्पीड़क को सन्तुष्ट करना था। उनकी ऐसी योजनाओं में हिंसा व्याप्त रही, लेकिन खेद है कि ऐसा होना ही था। वास्तव में गाँधीवादी पौरुष तो दूसरे को पराजित करने की जगह खुद परास्त हो जाने में था। मारने में नहीं बल्कि खुद मर मिट जाने में था, वह भी युद्ध भूमि में लड़ते हुये एक वीर सिपाही की भांति नहीं बल्कि गलियों में छिपते हुए एक निराश कुत्ते की तरह" (फाइव स्टोर्मी इयर्स इन लंदन – वी. डी. सावरकर, पृ. 176)।

इतिहास साक्षी है कि गाँधी जी के सभी अहिंसात्मक जन आन्दोलनों की परिणति हिंसा में हुई और अन्त में गाँधी जी को आन्दोलन बन्द कर प्रायश्चित रूप में उपवास करना पड़ा। भारतीय राजनीति में उनके अहिंसा के प्रयोग पूर्ण रुपेण अहिंसक न रह पाने के कारण असफल रहे हैं। इतना अवश्य है कि गाँधी की अहिंसा एवं मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति का अंग्रेजों एवं मुसलमानों ने पूरा फायदा उठाया। इससे उनके अनुयायी हताश हो गए तथा मुस्लिम कट्टरपंथी ताकतें बराबर मजबूत होती गई और उनकी मांगें लगातार बढ़ती गई।

वस्तुतः 'गाँधी जी सावरकर, लाजपतराय, श्री अरविन्द, मदन ढींगरा, स्वामी श्रद्धानन्द, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद व उधमसिंह आदि जैसा साहस कभी नहीं जुटा पाए। उन्होंने कायरता का मार्ग चुना' (गाँधी एवं गांधिज्म अनमास्कड-वाज गाँधी ए ट्रेटर? बी. डी. भारती, पृ. 52)। स्वामी श्रद्धानन्द की अब्दुल रशीद द्वारा हत्या के विषय में गाँधी जी की प्रतिक्रिया उनकी इस मानसिकता को दर्शाती है -- "उन्होंने हत्यारे के हिंसक कार्य के लिये एक शब्द भी नहीं कहा। उन्होंने हत्यारे अब्दुल रशीद को अपना भाई कहा। मैं उसे स्वामी जी की हत्या का दोषी नहीं मानता। वास्तव में दोषी वे लोग हैं जो एक दूसरे के खिलाफ घृणा की भावना फैलाते हैं" (सावरकर, वही पृ. 176)। फिर गुरुकुल कांगडी हरिद्वार के रजत जयन्ती समारोह के अवसर (मार्च 1927) पर बोलते हुए गाँधी जी ने कहा **"याद रखो – अब्दुल रशीद ने स्वामी जी की हत्या नहीं की। उसने उन्हें शहीद बना दिया"**। (सावरकर, वही पृ. 177) क्या इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि नाथूराम गोडसे ने गाँधी जी हत्या नहीं की बल्कि उसने उन्हें शहीद बना दिया?

गाँधी जी की पूर्ण अहिंसा की अनुचित और अव्यावहारिक नीति ने हिन्दुओं को और अधिक कायर और कमज़ोर बना दिया है जो महाबीर – बौद्ध की अहिंसा के कुप्रचार से पहले ही काफ़ी कमज़ोर था। आधुनिक भारत के हिन्दुओं को गाँधी जी की अहिंसा से ज्यादा किसी और ने इतना कमज़ोर नहीं बनाया। इस मानसिकता से मुक्ति पाने में हिन्दुओं को सदियों लगेंगी और तब तक बहुत देर हो जाएगी। यदि कोई भारत की आज़ादी का श्रेय गाँधी की अहिंसा को देना चाहे तो वह उसकी महान भूल होगी क्योंकि गाँधी जी का आज़ादी का आन्दोलन कभी अंहिंसक रहा ही नहीं। परन्तु इतना अवश्य हुआ कि गाँधी की हिन्दू-मुस्लिम एकता की अनिवार्यता की नीति तथा खिलाफत आन्दोलन ने केरल व अन्य स्थानों पर हिन्दुओं का महान नाश अवश्य करा दिया। इसके साथ जिन्ना की इस तथाकथित अहिंसात्मक सत्याग्रह का लाभ अवश्य मिला जिसके कारण गांधी जिन्ना की हर जिद्द के आगे हर स्तर पर नत मस्तक हुए और अन्त में कलकत्ता में अगस्त 1946 के हिंसक काण्ड के फलस्वरुप भारत खंडित हुआ।

वैदिकी अहिंसा

अब अहिंसा के विषय में वैदिक धर्म क्या कहता है? हिंसा हिन्दू धर्म का तत्त्व नहीं है। और न ही यह अकारण हिंसा को प्रोत्साहन देता है परन्तु 'शठं शाठ्यं **समाचरेत्**', यानी दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए। शत्रु को मार देना चाहिये। ऐसी नीति का उपदेश देता है वेद। देखिये प्रमाण :

जो शत्रु हानि पहुंचाता हो उसे जान से मार देना चाहिये। (अथर्व. 6. 134.3)

जो पापी हमें दबाना चाहता है उसे नष्ट कर दो। (अथर्व 5.6.10)

जो शत्रु हमें मारना चाहते हैं उसे हम पैर के नीचे दबा दें। (ऋ. 10. 13.412)

हम आक्रमकों को जीतें (ऋ. 12.28.6)।

शत्रुता करने वाले का भोज्य पदार्थ छीन लेवें। (अथर्व. 4.22.7)

हम अपने शत्रुओं को अपने पराक्रम से जीतें। (ऋ. 10.59.3)

मैं शत्रु हन्ता हूँ और इन्द्र के समान अजेय और अक्षत हूँ। (ऋ. 10. 166.2)

जो हमें हानि पहुंचाता हो वह हमारे अधीनस्थ हो कर रहे। (यजु. 12. 101)

दुष्ट को कठोरता से वश में करो। (यजु. 39.9)

इस प्रकार वेदों के सैकड़ों मन्त्र दुष्टों, पापियों एवं शत्रुओं को पूरी शक्ति से नष्ट करने का आदेश देते है। गीता (4.7) में श्री कृष्ण कहते हैं कि "जब-जब धर्म की हानि होती है तो दुराचारी अर्धमियों का नाश करने एवं धर्म की स्थापना करने के लिये मैं स्वयं अवतार लेता हूँ"। अत: वे अपने अनुयायियों को भी अधर्म का नाश करने की प्रेरणा देते हैं। मगर दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दू धर्म के आचार्य एवं उपदेशक उपरोक्त श्लोकों की व्याख्या करते हुए इस बात पर बल देते हैं कि जब पाप बढ़ जाएगा तो भगवान स्वयं अवतार लेंगे और हमारी रक्षा करेंगे यानी हमें कुछ नहीं करना है। परन्तु वे भूल जाते है कि शास्त्र स्पष्ट कहते हैं कि '**धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षित रक्षितः**' (मनु. 8.15) यानी "**धर्म ही निष्क्रिय को मार डालता है और धर्म ही रक्षक की रक्षा करता है**"। श्री कृष्ण या कोई भी दैवी शक्ति किसी हिन्दू या हिन्दू समुदाय को कृतार्थ करने को विवश नहीं हैं। आखिर अवतार का वह दिन कब आऐगा? जब हिन्दू समाप्त हो जाऐंगे। जब हिन्दुओं का देश समाप्त हो जाऐगा। गीता के इस श्लोक का सीधा अर्थ यही है कि अधर्म का नाश करने पर ही धर्म की स्थापना या रक्षा हो सकती है तथा अधर्म का नाश करना ही हर हिन्दू का परम धर्म है जो हर हिन्दू स्त्री, पुरुष, युवा, और युवती को स्वयं हर परिस्थिति में करना चाहिऐ।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि धर्म की ग्लानि कब और कैसे होती है? ऐसा तभी होता है जब किसी धर्म के अनुयायी और विशेष कर धर्म प्रचारक देश, काल, एवं परिस्थिति के अनुसार अपने धर्म या कर्त्तव्य का, धर्म रक्षा का पालन नहीं करते हैं। हिन्दुओं और उनके धर्म उपदेशकों ने भी अपने धर्म शास्त्रों की अवहेलना करके अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया है। आज हिन्दू धर्म शास्त्र, उनके उपदेशक एवं समाज तीनों ही अलग थलग पड़े हैं जबकि शास्त्रों में सभी समस्याओं का निदान है।

उसी उपेक्षा का फल है कि सारे विश्व में व्याप्त वैदिक धर्म आज सिकुड़ कर केवल खंडित भारत में ही रह गया है जहाँ उसे अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पढ़ रही है।

हालांकि '**अहिंसा परमो धर्मः**' महाभारत (4.21.19) का वचन है। मगर सत्य और न्याय के लिये पांडवों ने अपने भाईयों के साथ धर्म युद्ध किया या नहीं? उन्होंने भी युद्ध को टालने का भरसक प्रयास किया। मगर अहिंसा का मार्ग नहीं अपनाया और श्री कृष्ण शत्रु की किसी भी चाल में नहीं फंसे। वे साम, दाम, दण्ड, भेद आदि सभी नीतियों का पालन करते हुए सत्य मार्ग एवं धर्म स्थापना में लगे रहे। उन्होंने अहिंसा का मार्ग नहीं चुना। सत्याग्रह नहीं किया। श्री कृष्ण तो यहाँ तक कहते हैं कि अधर्म का नाश करने और धर्म की रक्षा करने में यदि प्राणों की भी बलि चढ़ाना पड़े तो भी जीवन की सार्थकता है (**स्वधर्मे निधनं श्रेयः**, गीता 3.35)। अत: समाज में अधर्म तथा अधर्मी का नाश करने में कोई पाप नहीं है, कोई अधर्म नहीं है।

गत 1300 वर्षों से हिन्दुओं पर लगातार अधर्म हो रहा है और हिन्दू अधर्म सह रहा है। पहले इस्लामी तलवार का, फिर ब्रिटिश राज की कूटनीति एवं मिशनरियों द्वारा धर्मान्तरण का और आज झूठे व थोथे सेक्यूलरवाद का। अब हिन्दुओं को अधर्म को और अधिक सहन नहीं करना चाहिए बल्कि हर अधर्म एवं पक्षपात की तीव्र प्रतिक्रिया करनी चाहिये, क्योंकि आततायी का विरोध, यहाँ तक कि मारना भी धर्म सम्मत है। हिन्दू जीसस की तरह नहीं कहता कि '**जो हमारे साथ नहीं, वह उसके विरोध में है** (मत्ती 12.30)। हिन्दू गैर-हिन्दू को शत्रु नहीं मानता है। उसने बलवान की अहिंसा को स्वीकारा है, और अपने शत्रुओं पर भी अहिंसा व क्षमा दिखाई है। लेकिन आज हिन्दू सम्पूर्ण विनाश के कगार पर खड़ा है और यदि हिन्दू को जीवित रहना है तो थोथी अहिंसा के नारे से अपने को दूर रखना होगा जैसे सांप भी एक समय के बाद केंचुली को त्याग देता है।

हिन्दू आज यह पहचानने की कोशिश करे कि कौन अहिंसा का पात्र है, कौन नहीं। जो नीतियाँ हिन्दू धर्म के प्रचार प्रसार में बाधक हैं उसका विरोध होना ही चाहिये। मनु कहते है "जो अधर्मी है, आततायी है, उसे मारने में कोई अपराध नहीं है। चाहे वह गुरु, बालक, पिता, वृद्ध, बहुत शास्त्रों का श्रोता कोई भी क्यों न हो (मनु. 8.350, 351)।

स्मृतिकारों का वचन है कि उसे मार दो जो (1) मातृभूमि पर आक्रमण करे। (2) खड़ी फसलों को नुकसान पहुंचावे, (3) पूजा स्थलों को तोड़े या अपवित्र करे। (4) माँ, बहिन, पुत्री या पत्नी का अपमान करे या दुर्व्यव्यहार करे। अत: हिन्दू जो धर्म को नाश करने या अधर्म करने का प्रयास करे उसका सब प्रकार विरोध या नाश करें।

आज अधर्म क्या है?

यहाँ इतना बता देना उचित होगा की आज भारत में हिन्दुओं के लिये सबसे बड़ा अधर्म क्या है? हिन्दुओं के धर्मान्तरण की आजादी देना अधर्म है। असमान आचार संहिता अधर्म है। अल्पसंख्यकवाद के नाम पर अहिन्दुओं को विशेष सुविधा देना और हिन्दुओं को उनसे वंचित रखना (संविधान की धारा 25 से 30) अधर्म है। सेक्यूलरिज्म के नाम पर हिन्दुओं की उपेक्षा करना तथा असमान नीतियाँ अपनाना अधर्म है।

जब द्विराष्ट्र सिद्धान्त यानी हिन्दू और मुसलमान के नाम पर देश का बटवारा हुआ तो बचे-खुचे भारत को हिन्दू राष्ट्र घोषित न करना अधर्म है। अल्पसंख्यकवाद और सेक्यूलरिज्म के नाम पर हिन्दू हितों की उपेक्षा करना अधर्म है। कश्मीर से हिन्दुओं का निकाला जाना अधर्म है। बंगलादेशी घुसपैठी मुसलमानों को भारत में बसाना अधर्म है। गैर-हिन्दुओं की धर्माधारित सरकारी नौकरियों में आरक्षण देना अधर्म है। आदि आदि।

हिन्दू अधर्म का विरोध करें

यदि हिन्दू अपनी आगामी पीढ़ी को सुरक्षित एवं इस बचे खुचे एक मात्र भारत देश में भी अपने धर्म का अस्तित्व बचाना चाहते हैं तो उसे हर प्रकार के अधर्म की नीतियों एवं कार्यों का प्राण पण से डटकर विरोध करना होगा। आज हिन्दू के लिये धर्म युद्ध के अलावा कोई चारा नहीं रह गया है क्योंकि थोथी अहिंसा हिन्दुओं का परम धर्म नहीं है। ऐसा धर्म युद्ध करना यानी अधर्म का विरोध करना तो आज की वोट की राजनीति में और भी आवश्यक हो गया है क्योंकि सभी राष्ट्रीय नीति निर्धारक निर्णय वोट की राजनीति से ही लिये जाते हैं।

अतः सभी सिख, बौद्ध, जैन आदि सहित समस्त हिन्दू एक जुट होकर अपने राष्ट्र और धर्म रक्षा के धर्म का पालन करें क्योंकि धर्म को व्यावहारिक रूप देना एवं पालन करना ही धर्म है और धर्म का पालन न करना अधर्म है। कोरे धर्म के ज्ञान का बोझ ढोने से धर्म की रक्षा नहीं होगी क्योंकि धारण करने पर ही धर्म, धर्म रहता है।

हिन्दू का सैनिकीकरण और राजनीति का हिन्दूकरण करो

– वी. डी. सावरकर

9

सेक्यूलरिज़्म

आज भारत की राजनैतिक गतिविधियों में सेक्यूलरिज़्म एक बहुचर्चित विषय बना हुआ है। सभी राजनैतिक पार्टियों ने इसे राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का एक आवश्यक अंग मान रखा है और इन पार्टियों ने चाहे वे सरकार में हों या बाहर, अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण के लिए एक जबरदस्त पारस्परिक होड़ लगा रखी है। परिणामस्वरुप जहाँ एक तरफ भारतीय मुसलमानों व ईसाइयों की सभी उचित व अनुचित मांगें मानी जा रही हैं, वहीं दूसरी तरफ उनकी सेक्यूलरिज़्म के नाम पर नित नई मांगों का अन्तहीन सिलसिला जारी है। परिणामस्वरुप इस विकृत-सेक्यूलरिज़्म के नाम पर हो रहे पक्षपात के कारण बहुसंख्यक हिन्दू समाज में महान आक्रोश है।

मगर यहाँ विचारणीय यह है कि जिस सेक्यूलरिज़्म के नाम पर अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण किया जा रहा है, क्या इस्लाम और ईसाइयत सेक्यूलरिज़्म के सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं? क्या यह उनकी धार्मिक आस्थाओं के अनुकूल है? क्या कुरान और बाइबिल सेक्यूलरिज़्म की अनुमति देते हैं? क्या मुल्ला, मौलवी और पादरी अपने धर्म प्रचार में सेक्यूलरिज़्म को स्थान देते हैं? क्या इनकी शिक्षण संस्थाओं में विद्यार्थियों को सेक्यूलर बनाने के लिए पर्याप्त पाठ्यक्रम हैं? क्या किसी राजनेता ने इनके लिए, दुहाई करने से पहले इनकी शिक्षण संस्थाओं में सेक्यूलर शिक्षा का समुचित प्रावधान देख लिया है? हाँ इतना अवश्य है कि हिन्दू को सेक्यूलर बनाने के लिए उसे अपनी धार्मिक शिक्षा के अधिकार से अवश्य वंचित कर दिया है (संविधान अनु० 26-28) जो कि हिन्दुओं के साथ सरासर अन्याय एवं पक्षपात है। यह कैसा संविधान कि जो अधिकार अल्पसंख्यकों को है, वह बहुसंख्यकों को नहीं।

सेक्यूलरिज़्म की उत्पत्ति

सेक्यूलर राज्य की अवधारणा माकियावेली (1460 1527) [illegible] लगभग पांच सौ वर्ष पहले, इटली में लोगों के धार्मिक [illegible]

जीवन में भी चर्च की मान्यताओं का अत्यधिक हस्तक्षेप था। तभी माकियावैली ने अपनी पुस्तक 'दी प्रिन्स' में इस बात पर बल दिया कि लोगों के लौकिक मामलों में चर्च की मान्यताओं का हस्तक्षेप बिल्कुल नहीं होना चाहिए। राज्य व्यवस्था, धर्म व्यवस्था से मुक्त होनी चाहिए। यानी राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। व्यवहार में यह कैसे हो। इसके लिए दिसम्बर 1851 में, जार्ज जैकब होलियोक ने सेक्यूलरिज़्म की अवधारणा को मनुष्य के स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चिन्तन के आधार पर डाली। तभी से सेक्यूलरिज़्म को एक आन्दोलन के रुप में माना गया। इसमें तीन शब्द हैं – सेक्यूलर, सेक्यूलर राज्य और सेक्यूलरिज़्म और ये तीनों ही शब्द भिन्न होते हुए भी स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चिन्तन की आधारशिला पर होने के कारण आपस में जुड़े हुए हैं।

परिभाषाऐं

सेक्यूलर का शाब्दिक अर्थ है : लौकिक, धर्म मुक्त, पंथ नियंत्रण मुक्त, असाम्प्रदायिक, सांसारिक आदि। अतः इसका किसी धर्म विशेष से सम्बन्ध नहीं है जैसे खेल। इसी प्रकार सेक्यूलर राज्य का मूल अर्थ है **"राज्य के अधिकार क्षेत्र को चर्च या पंथ के अधिकार क्षेत्र से अलग रखना"** यानी ऐसा राज्य जिसमें समान विधि विधान हो, और राज्य प्रशासन में नागरिकों के धार्मिक पंथ की मान्यताओं का कोई हस्तक्षेप न हो। इसका **अर्थ** यह नहीं कि राज्य धर्म विहीन हो, नैतिकता मुक्त हो, मानवता से रहित हो। यहाँ राष्ट्र का हित नागरिकों के रिलीजन से ऊपर माना गया है। इसका एक मात्र यही अर्थ है कि राज्य सब नागरिकों को समानता दे तथा प्रशासन व्यवस्था में किसी सम्प्रदाय विशेष के नियमों को नागरिकों पर न थोपा जाए। हमारी 'संविधान समिति' का भी यही उद्देश्य था कि "राज्य **का अपना कोई संवैधानिक पंथ न होगा और राज्य की दृष्टि से सब नागरिक समान होंगे, चाहे उनका कोई भी पंथ हो**"। मगर संविधान में सेक्यूलर तथा सेक्यूलरिज़्म की आज तक कोई व्याख्या नहीं की गई है क्योंकि व्यवहार में यह अत्यन्त कठिन है और कुछ ने तो सेक्यूलर राज्य को ही सेक्यूलरिज़्म मान लिया है जबकि दोनों में व्यापक अन्तर है।

जार्ज होलियोक के अनुसार **"सेक्यूलरिज़्म व्यक्ति का आत्म चेतना आधारित स्वतंत्र चिंतन है। यह एक प्रकार की आचरण प्रक्रिया है जिससे आत्म चेतना मानव समाज की सेवा में तत्पर होने को प्रेरित होती है।"** अतः मानवापयोगी, निष्पक्ष, **स्वतंत्र चिन्तन** ही सेक्यूलरिज़्म का आधार है (आरिजन एण्ड नेचर ऑफ सेक्यूलरिज़्म – जार्ज जेकब होलियोक पृ० 7)। परन्तु क्या कुरान और बाइबिल अपने अनुयायियों को स्वतंत्र चिन्तन की आज्ञा देते हैं? नहीं, बिल्कुल नहीं। अतः उनके लिए सेक्यूलरिज़्म एक अमान्य अवधारणा है। इसके अलावा इन ग्रंथों

में राजनीति को धर्म से अलग नहीं रखा गया है बल्कि राज्य प्रसार से ही धर्म प्रसार का आवाहन किया गया है तो फिर पंथ राजनीति से अलग कैसे हो सकता है? कभी नहीं!

क्या इस्लाम सेक्यूलरवादी है?

भारतीय मुसलमान अपनी हर राजनैतिक मांग के साथ सेक्यूलरिज़्म की दुहाई देते हैं। मगर क्या वे सेक्यूलरवादी हैं? इसका उत्तर इस्लामी साहित्य के प्रकांड विद्वान प्रो० मुशीरुल हक़ अपनी पुस्तक "इस्लाम इन सेक्यूलर इंडिया" में ऐसे देते हैं कि **"भारतीय मुसलमानों में एक छोटे से वर्ग को छोड़कर बहुसंख्यक समाज किसी भी प्रकार से सेक्यूलर नहीं है (पृ० 1) . . . . अधिकांश उलेमाओं का विश्वास है कि राज्य तो सेक्यूलर रहे, लेकिन मुसलमानों को सेक्यूलरिज़्म और सेक्यूलर राज्य की अवधारणाओं को शरियत के आधार पर स्वीकृत या अस्वीकृत करना होगा। सेक्यूलर राज्य जैसा हम देख चुके हैं, इस्लाम के इतिहास में भी है। अतः स्वीकार्य है। लेकिन सेक्यूलरिज़्म का सिद्धान्त इस्लाम की मान्यताओं के अनुकूल नहीं है।"** (वही पृ० 15)

इसी भावना से प्रेरित हो जमाते इस्लामी के नेता सैयद अहमद ने 7 फरवरी 1961 को औरंगाबाद में कहा "क्या मुसलमान अपने तमाम इस्लामी सिद्धान्तों को छोड़कर सेक्यूलरिज़्म की बढ़ती हुई धारा में बह जाएंगे या धारा के प्रवाह को ही बदल देंगे और **यहाँ इस्लामी राज्य स्थापित करेंगे**? यह एक गम्भीर चुनौती है जो हर मुसलमान के दिल और दिमाग को झकझोर रही है। इस्लाम के अनुयायियों का दावा है कि इस्लाम की उत्पत्ति ही विश्व में इस्लाम की स्थापना के लिये हुई है। **हमें तो भारत में सेक्यूलर राज्य को बदलना है और उसकी जगह इस्लामी राज्य बनाना** है। इस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिये सभी मुसलमानों को इकट्ठा हो जाना चाहिए।"

भारत ही नहीं, विश्व भर के मुसलमान सेक्यूलरिज़्म के खिलाफ हैं। हिन्दुस्तान टाइम्स (23.1.96) के अनुसार **"ताजिकिस्तान के एक आध्यात्मिक नेता मुफती फेथुलो शैरीफोव और उसके परिवार के तीन सदस्यों** और एक **अनुयायी को कट्टरपंथी मुसलमानों ने सिर्फ इसलिए मार दिया** क्योंकि वह **प्रजातंत्रीय सेक्यूलर राज्य का पोषक था और राज्य** कार्यों में इस्लामी **धार्मिक हस्तक्षेप** का विरोध करता था"। अतः भारतीय मुसलमानों को सेक्यूलर राज्य तो स्वीकार्य है, क्योंकि इसमें राज्य उनके धर्मपालन में विघ्न नहीं करता है। **मगर सेक्यूलरिज़्म में** आत्म चेतनानुसार स्वतंत्र चिन्तन की अनिवार्यता है, और शरियत

मुसलमानों को इससे भिन्न स्वतंत्र चिन्तन की आज़ादी नहीं देती है, इसीलिए मुसलमानों को सेक्यूलरिज़्म स्वीकार्य नहीं है। अतः मुसलमान न स्वयं सेक्यूलरवादी हैं और न कभी सेक्यूलरिज़्म को मानेंगे ही।

क्या ईसाइयत सेक्यूलरवादी है?

इस विषय में ईसाई भी मुसलमानों से भिन्न नहीं हैं। बाइबिल के एक वचन के अनुसार "**जैसा कि हमने पहले कहा है, उसी को मैं फिर कहता हूँ, यदि कोई मनुष्य तुम्हें जो उपदेश दिया गया है उसके अलावा, अन्य उपदेश देता है तो उसको अभिशापित किया जाए**" (गेल० 1:9)। ईसाइयत, सेक्यूलरिज़्म को अपने प्रचार-प्रसार में बाधक मानती है। पोप लियो (तेरहवें) ने 21 अप्रैल 1878 को कहा "**सेक्यूलरिज़्म निन्दनीय है। विश्व युद्धों सहित तमाम बुराईयों की जड़ प्रजातंत्र और सेक्यूलर चिन्तन है**"। पुनः 1928 में जेरुसलम में डॉ० रूफस जोन्स ने कहा "**सांसारिक समस्याओं के बारे में जागरूक कोई भी व्यक्ति इसकी अनदेखी नहीं कर सकता है कि आज विश्व में ईसाइयत का सबसे शत्रु न इस्लाम है, न हिन्दुज़्म, न बौद्धमत और न कन्फयूसियनिज़्म जितना कि विश्व व्यापी सेक्यूलर जीवन पद्धति है**" (दी क्रिश्चियन लाइफ एण्ड मैसेज, इन्टरनेशनल मिशनरी काउंसिल रिपोर्ट, जेरुसलम खंड, 3. पृ० 284)। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो सेक्यूलरिज़्म की उत्पत्ति ही राज्य कार्य में चर्च के हस्तक्षेप के विरोध के फलस्वरूप हुई है। अतः यह ईसाइयत को भला मान्य कैसे हो सकता है?

ईसाइयत तो नागरिकों की राष्ट्रीय भावनाओं को भी ईसा मसीह के प्रति विश्वासघात मानती है। जे० मिडलटन मुरे के अनुसार "**राष्ट्रीयता की उठती हुई शक्तियों के प्रति ईसाई चर्च का आत्म समर्पण ईसा मसीह के साथ एक महान विश्वासघात है**"। (दी बिट्रेयल आफ क्राइस्ट बाई दी चर्चिज; पृ० 92)।

अतः ईसाइयत भी धार्मिक क्षेत्र में अपने अनुयायियों को सेक्यूलरिज़्म न मानने का अनुरोध करती है। मगर राजनैतिक क्षेत्र में उसकी आड़ में सभी राजनैतिक सुविधाऐं एवं धर्म प्रचार-प्रसार एवं हिन्दुओं के धर्मान्तरण को बढ़ावा देने वाली सुविधाओं जैसे दलित ईसाई आरक्षण आदि, की मांग करती रहती है।

भारत में मुसलमानों और ईसाइयों का सेक्यूलरिज़्म का नारा तभी तक है जब तक कि वे भारत की सत्ता नहीं पा लेते हैं या हिन्दू अल्पमत में नहीं हो जाते यानी सेक्यूलरिज़्म तभी तक है जब तक कि हिन्दू बहुमत में हैं। जैसाकि कांग्रेसी सांसद एम०जे० अकबर ने कहा है "**हिन्दुस्थान सेक्यूलर राज्य है। इसलिए नहीं कि उसकी आबादी का पांचवां हिस्सा मुस्लिम, सिख या ईसाई है, और संविधान को सेक्यूलर बनाए रखने में उसका निहित स्वार्थ है; परन्तु इसलिए कि दस में से नौ हिन्दू अल्पसंख्यकों के प्रति हिंसा में विश्वास नहीं रखते। यदि सब हिन्दू उग्र और हिंसक हो गए होते, तब विश्व की कोई शासन व्यवस्था मुसलमानों के कत्ले आम को रोक नहीं पाती, क्योंकि वे सम्पूर्ण देश के गांवों और नगरों में बिखरे हुए हैं**" (इंडिया : दी सीज़ विदिन; पृ० 23)।

> "India remains a secular state not because one-fifth of its population is Muslim, Sikh or Christian, and therefore has a vested interest in a secular Constitution, but because nine out of ten Hindus do not believe in violence against the minorities. If all the Hindus had been zeolots, no law and order machinery in the world could have prevented the massacre of Muslims who are scattered in villages and towns all across the country" (M.J. Akbar, India : The Siege within, Penguin, 1985, p. 23).

आज राजनैतिक पार्टियों और सरकार का व्यवहार में सेक्यूलरिज़्म का अर्थ है हिन्दू हितों की उपेक्षा और अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण। वह भी जब कि मुसलमान और ईसाई दोनों ही सम्प्रदाय धार्मिक दृष्टि से सेक्यूलरिज़्म की अवधारणा को नहीं मानते हैं। उचित तो यही होगा कि भारतीय अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों, के साथ वैसा ही व्यवहार होना चाहिए जैसा कि शरियत में इस्लामी देशों में अल्पसंख्यकों के साथ होता है और संविधान में वैसा ही प्रावधान किया जाना चाहिए। क्योंकि भारतीय मुसलमानों को शरियत को पूरी तरह मानना चाहिए। यहाँ तक कि अपराधों की दण्ड व्यवस्था में भी।

क्या हिन्दू धर्म सेक्यूलरवादी है?

इस विषय में यही कहना उचित होगा कि हिन्दू धर्म वर्तमान विकृत-सेक्यूलरिज़्म को नहीं मानता है और शायद यूरोपीय सेक्यूलरिज़्म को भी सभी बारीकियों सहित मानने में पूरा खरा न उतरे। परन्तु इतना अवश्य है कि हिन्दू धर्म सेक्यूलरिज़्म के मूल प्राण स्वतंत्र, चिन्तन की अवधारणा का पूर्ण अनुमोदन करता है। हिन्दू धर्म अपने अनुयायियों को कर्तव्य-अकर्तव्य और उनके परिणामों का बोध कराकर व्यक्ति को आचरण के लिए अपनी आत्मा को प्रिय लगने वाले विवेकपूर्ण स्वतंत्र चिन्तन और

उसके निर्णय पर छोड़ देता है। महर्षि मनु ने धर्म के चार आधारभूत लक्षणों में से **'स्वस्य च प्रिय आत्मनः'** (मनु. 1.131) यानी अपनी आत्मा को प्रिय लगने वाले स्वतंत्र निष्पक्ष एवं विवेकपूर्ण निर्णय को मानव धर्म का एक लक्षण माना है। इस प्रकार हिन्दू धर्म सेक्यूलरिज़्म की स्वतंत्र चिन्तन की अवधारणा को पूरी तरह मानता है और इस दृष्टि से वह शुद्ध सेक्यूलरिज़्म का सच्चे अर्थों में समर्थन करता है।

वस्तुतः भारतीय सेक्यूलरिज़्म का व्यवहार में अर्थ है, हिन्दुओं की उपेक्षा, हिन्दुओं के अधिकारों को तिलांजलि देकर उन्हें मुसलमानों व ईसाईयों को दे देना, हिन्दुओं के धर्म ग्रंथों की निन्दा करना, पूजास्थलों को अपवित्र व नष्ट करना, हिन्दू देवी देवताओं की भर्त्सना करना, हिन्दू जननायकों व वीरों की उपेक्षा करना और आक्रान्ता बर्बर विदेशियों के गुणगान करना, हिन्दू संस्कृति की जगह मुस्लिम व पश्चिमी संस्कृति को वरीयता देना, हिन्दुओं को उनकी धार्मिक शिक्षा से वंचित करना, उनके धर्मान्तरण को बढ़ावा देना, हिन्दुओं की सभी उचित मांगों का विरोध करना तथा हिन्दुओं को भाषा, बोली, क्षेत्रीयता तथा जाति के आधार पर भेदभाव कर बांटना आदि। इतने पर यदि कोई हिन्दू उचित न्याय माँगे तो उसे ये कहकर समझा देना कि हम क्या करें हमारा तो धर्मविहीन सेक्यूलर राज्य है। इसके विपरीत अहिन्दुओं की सभी माँगों को यह कह कर उचित ठहराना कि उन्हें ये सब अधिकार संविधान में 'धर्म की स्वतंत्रता' सम्बन्धी अनु० 25 में पहले ही दिए हुए हैं। परिणामस्वरूप सरकार ने गत 50 वर्षों से संविधान की आड़ में हिन्दुओं को उन्हें अपने मौलिक अधिकारों से वंचित कर उन्हें अपने ही देश में द्वितीय श्रेणी का नागरिक बना दिया है। इतने पर भी यदि कोई व्यक्ति या राजनैतिक पार्टी राष्ट्र हित व राष्ट्रीय सुरक्षा की बात करती है जैसे विदेशी बंगलादेशियों का भारत में अनधिकृत घुसपैठ को रोकना एवं कांग्रेस, जद व सीपीएम पार्टी का उन्हें बसाना, तो उसे साम्प्रदायिक कहकर अपमानित किया जाता है मानो राष्ट्र भावना देशद्रोह और देशद्रोह राष्ट्रीयता है।

उपरोक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि इस्लाम और ईसाइयत एक व्यक्तिनिष्ठ रिलीजन होने के कारण सेक्यूलरिज़्म के स्वतंत्र चिन्तन को मान्यता नहीं देते हैं; जबकि हिन्दू धर्म प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र चिन्तन, विचारों की अभिव्यक्ति और आचरण की स्वतंत्रता का अनुमोदन करता है जो कि मानव धर्म की एक प्रमुख विशेषता है। व्यवहारिक सचाई तो यह है कि किसी व्यक्ति द्वारा चलाए गए पंथ में सभी व्यक्तियों की, सभी कालों और सभी देशों की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं का हल नहीं हो सकता है। इसीलिए कुरान एवं दो लाख हदीसों के बाद भी मुल्ला, मौलवी अपने अनुयायियों को लाखों ही फतवे दिन रात देते रहते हैं और आगे भी देंगे। जबकि हिन्दू धर्म न्यायपूर्ण, पक्षपात रहित, विवेकपूर्ण

निर्णय एवं स्वतंत्र चिन्तन से सभी समस्याओं का मानवोपयोगी व कल्याणकारी निर्णय ढूंढ निकालता है। यह स्वतंत्र चिन्तन एवं धार्मिक लचीलापन ही हिन्दू धर्म की प्रगतिशीलता भी है और प्रतिरोधिनी शक्ति भी है। इसके विपरीत अनेकों साम्प्रदायिक कट्टरताओं के कारण इस्लाम व ईसाइयत में संकीर्णता है, प्रगतिशीलता पर अंकुश है जिससे मानसिक और आध्यात्मिक विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। परिणामस्वरुप व्यक्ति मज़हबी गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा, पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह विवशता में जी रहा है जबकि हिन्दू धर्म में स्वतंत्र चिन्तन के कारण व्यक्ति स्वतंत्र पक्षी की तरह सर्वांगीण विकास के क्षितिज में ऊंची से ऊची उड़ान भरने को स्वतंत्र है क्योंकि हिन्दू का विश्वास है कि स्वतंत्रता ही जीवन है, पराधीनता ही मृत्यु है, भले ही वह पराधीनता धार्मिक हो।

यदि आज भारत के राष्ट्रपति से लेकर केन्द्र व राज्यों के मंत्रीगण, सांसद व एसेम्बली सदस्य, विभिन्न पार्टियाँ और उनके नेता सेक्यूलरिज़्म की अनिवार्यता मानते हैं और इसी में अपने अपने अस्तित्व की सार्थकता मानते हैं तो वे इसकी मूल भावना को समझें, इसे ईमानदारी से अपनाएं तथा सबसे पहले स्वयं अपनी अपनी मज़हबी सीमाओं से उठकर राष्ट्र हित में स्वतंत्र और निष्पक्ष चिन्तन के अनुसार आचरण करना प्रारम्भ करें। स्वयं सेक्यूलरवादी बनें, नागरिकों को सेक्यूलरवादी बनाने के तरीके सोचें व उन्हें व्यवहार में लाएं। समान नागरिक आचरण संहिता (अनु. 44) का कानून लाएं, समान राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति अपनाऐं, उसे सेक्यूलर रुप दें, इस्लामी मदरसों, मिशन स्कूलों और गुरुकुलों, जहाँ भी धार्मिक कट्टरता एवं धार्मिक वैमनस्य पैदा करने वाली शिक्षा दी जाती हो, उसे बन्द करें अथवा उनके पाठ्यक्रमों को सेक्यूलरिज़्म की मूल भावना के अनुसार सुधारें, सरकारी खर्चे पर इस्लामी शिक्षा, हज यात्रा व इमामों को वेतन देना बन्द करें, धार्मिक अल्पसंख्यकों व बहुसंख्यकों के बीच भेद भाव के कानून न बनाएं, इफ्तार पार्टी देना बन्द करें, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारों एवं गिरिजाघरों व अन्यत्र आयोजित धार्मिक कार्यक्रमों में अपने सरकारी व राजनैतिक पद के आधार पर भाग न लें, राम कृष्ण, बुद्ध, महावीर, सिख गुरुओं, मौहम्मद, जीजस क्राइस्ट आदि धार्मिक महापुरुषों से सम्बन्धित सार्वजनिक छुट्टियाँ न करें। सरकार व नेताओं का कोई कार्य, विधि-विधान एवं निर्णय, किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष के प्रति पक्षपातपूर्ण न हो। मगर आज तक किसी भी राजनैतिक पार्टी ने ईमानदारी से सेक्यूलरिज़्म को व्यावहारिक रुप में नहीं अपनाया है। थोथे नारे जरुर लगाए हैं तथा हिन्दुओं के अधिकारों को छीनकर अल्पसंख्यकों को जरुर दे दिए हैं।

10

उपसंहार

इस्लाम की तरह ईसाइयत भी एक सर्व सत्तात्मक राजनीति से प्रेरित धार्मिक पंथ है। इन्होंने सदैव विश्व के अन्य धार्मिक विश्वासों, राजनैतिक व्यवस्थाओं और संस्कृतियों को अवमानित, संहार और नष्ट करने का भरसक प्रयास किया है। इसके विपरीत चर्च ने यूरोप में हुए प्रथम और द्वितीय महायुद्धों की सदैव कटु आलोचना की है क्योंकि इससे ईसाइयों की जनसंख्या को भारी क्षति हुई थी। इसीलिए अब अमरीका और चर्च मिलकर यह चाहते हैं कि भावी विश्व युद्ध यदि हो तो वह एशिया और वरीयता क्रम में भारत में लड़ा जाए।

ईसाइयत के राजनैतिक उद्देश्य

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका में राजनैतिक युद्ध नीति का पुनर्नवीनीकरण किया गया और इस चिन्तन में इस तर्क को प्रमुखता दी गई कि किसी भी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सीधे युद्ध करने की अपेक्षा अप्रत्यक्ष युद्ध बेहतर होगा तथा अन्य देशों को आर्थिक सहायता देकर, बिना युद्ध किए उनका अनुचित लाभ उठाया जा सके तो यह सीधे युद्ध में धन, सैनिक शक्ति और युद्ध सामग्री के व्यय से कहीं अधिक सस्ता पड़ेगा।

इसी चिन्तन के आधार पर वेटिकन (रोमन, केथोलिक चर्च) और अमरीका दोनों के माध्यम से चर्च ने पूर्व यू.एस.एस.आर. (रशिया) को अस्थिर करना आरम्भ किया और इस उद्देश्य की पूर्ति में उन्हें आशातीत सफलता मिली है। अब चर्च का अगला तात्कालिक लक्ष्य भारत को अस्थिर कर, विभाजित व नष्ट करना है और इसके बाद अगला लक्ष्य चीन है।

चर्च भारत को पहले सांस्कृतिक और फिर राजनैतिक दृष्टि से अस्थिर एवं नष्ट करने की सदियों से लगातार कोशिश करता चला आ रहा है। अमरीकी सी.आई.ए. प्रमुख ने एक बार इस तथ्य को स्वीकारा भी कि उन्होंने ईसाई मिशनरियों को

राजनैतिक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया है।

एशिया की ईसाई कान्फ्रैन्स (सीसीए) ने अपना सातवाँ एसेम्बली अधिवेशन (18 से 28 मई, 1981), बंगलोर में आयोजित किया जिसमें प्रचारित 10वें पत्रक – "भारत में अछूतों का उत्पीड़न एवं हत्याऐं और ईसाइयों का उत्तरदायित्व" (अनु. ले) में कहा गया है कि **"सारे भारत में अन्तर्जातीय युद्ध फैल रहा है और हम संयुक्त राष्ट्र संघ और मानव अधिकार आयोग को एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने का विचार कर रहे हैं ताकि हम दलितों के लिए एक अलग राज्य–दलतिस्तान की मांग के लिए संघर्ष कर सकें"** (पृ. 1) पुनः यह भी कहा गया है कि "सीसीए स्वयं भी इस गम्भीर समस्या के बारे में सोचे तथा यह अपने कार्यक्रम में अछूतों की मुक्ति को सबसे अधिक प्रमुखता दे जो कि आज विश्व की सबसे गम्भीर समस्या है जिस पर चर्च को तत्काल ध्यान देने की आवश्यकता है"।

इसी प्रकार सीसीए द्वारा कोलम्बो में आयोजित (28 अक्टू. - 3 नव. 1981) 'धर्म की भूमिका और राष्ट्रीय सद्भावना' विषय पर, अछूतों की तरफसे बोलते हुए बंगलौर से प्रकाशित चर्च-प्रेरित 'दलित वॉइस' के सम्पादक वी.टी. चन्द्रशेखर ने कहा **"(भारत में) मुसलमान, ईसाई और हिन्दू आपस में लगातार लड़ने वाली कौमें हैं"**।

चर्च की भांति अमरीका का प्रयास भी यही है कि रशिया की तरह भारत को अस्थिर करके विभाजित कर दिया जाए जैसाकि अमरीकी राज्य विभाग द्वारा आयोजित गोष्ठी (16.7.1996) के वक्तव्यों और विस्कोन्सिन विश्वविद्यालय में आयोजित (5–7 नव. 1996) गोष्ठी में व्यक्त विचारों से सुस्पष्ट है। सारे वक्तव्यों का सार यही था कि भारत एक व्यर्थ भौंकने वाला दुष्ट कुत्ता है। इसे समाप्त कर दो (आर्गेनाइजर 22.10.96)। शायद अमरीका समझता है कि दुनिया के लोग अमरीका द्वारा रेड इन्डियनों के साथ किए गए अमानवीय अत्याचारों और आज भी प्रतिदिन उनके साथ किए जा रहे भेद भावों से भली भांति अवगत नहीं हैं। क्या लोग वैटिकन, पोपों एवं विश्व चर्च द्वारा विश्व के विभिन्न भागों में किए गए अत्याचारों को भूल गए हैं या उनकी कुटिल कूटनीतियों से अवगत नहीं हैं?

आज भी भारत में चर्च, समाज कल्याण के नाम पर, अनुसूचित एवं जन जातियों के स्वार्थी नेताओं से मिलकर अनेकों पत्र, पत्रिकाओं व प्रचार माध्यमों द्वारा अलगाववादी विष वमन कर रहे हैं। निराधार आक्षेपों से भरा 'दलित वाइस' का साहित्य एक भयंकर अलगाववादी भूमिका निभा रहा है जो कि असह्य है। सचाई तो यह है कि चर्च ने धर्मान्तरण के अलावा दलितों के नाम पर एक व्यापक सामाजिक विघटनकारी अभियान चला रखा है जो 1947 से पूर्व पराधीनताकाल से भी ज्यादा

भयानक एवं दुष्परिणामकारी सिद्ध होगा।

चर्च की हिन्दू विरोधी नीतियां सुस्पष्ट हैं जैसे कि **"वर्तमान नीतियों के बारे में हमारा चिन्तन भारत में हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा को निन्दा और इसे अस्वीकार करने को प्ररित करता है"** राजा बी मनिकम (Our considerations of the prevailing political ideologies in India lead us to the outright condemnation and rejection of Hindu Nationalism" Christianity and the Asian Revolution Edited by Rajah B. Manikam, p. 96).

चर्च की नीति, हिन्दू धर्म पर ही नहीं, बल्कि इस्लाम पर भी आक्रमण करने की रही है। क्रिश्चियन लिटरेचर सोसायटी लंदन से प्रकाशित एक लेख में कहा गया है कि **"ईसाइयत की इस्लाम के प्रति नीति होनी चाहिए – आक्रमण, रक्षा नहीं, प्रेमासक्त भावना से आक्रमण, इस्लाम में सच्चाई के प्रति उदारतापूर्वक प्रशंसा लेकिन फिर भी आक्रमण, पूरी तैयारी के साथ, तीव्र और योजनाबद्ध ढंग से आक्रमण"** (लखनऊ-1911, जनवरी 23-28, 1911 में आयोजित गोष्ठी से, पृ. 10)। "The policy of Christiandom with regard to Islam must be attack, not defence : Attack in all spirit of love and generous appreciation of truth in Islam, but still attack, vigorous concerted, and all along the line." (Lucknow 1911, by General Conference of Missions to Muslims held at Lucknow Jan. 23-28, 1911; p. 10, Pub. Christian Literature Society for India, London, 1911).

इस्लाम के राजनैतिक उद्देश्य

इस्लाम की हिन्दू धर्म और भारत के प्रति यही नीति रही है कि किसी प्रकार अधिकांश भारत का इस्लामीकरण करके यहाँ इस्लामी राज्य स्थापित कर दिया जाए, और जब तक ऐसा किया जाए तब तक सेक्यूलरिज़्म का नारा लगा कर सभी राजनैतिक पार्टियों में घुसकर अपने अपने ढंग से इस्लामी हितों की रक्षा की जाए जैसा कि स्वयं मुस्लिम नेताओं के कुछ निम्नलिखित उद्धरणों से सुस्पष्ट है :-

1. 1921 में कांग्रेस अध्यक्ष हकीम अजमल खां ने कहा " एक ओर भारत और दूसरी ओर एशिया माइनर, भावी इस्लामी संघ रूपी जंजीर की दो छोर की कड़ियां हैं जो धीरे-धीरे किन्तु निश्चय ही बीच के सभी देशों को एक विशाल संघ से जोड़ती हैं। (पुरुषोत्तम, मुस्लिम राजनीतिक का चिन्तन और आकांक्षायें; पृ. 51 से उद्धृत)
2. मौलाना अबुल कलाम आजाद ने कहा " . . . **भारत जैसे देश को जो एक**

बार मुसलमानों के शासन में रह चुका है, कभी भी त्यागा नहीं जा सकता और प्रत्येक मुसलमान का कर्तव्य है कि इस पर खोई हुई मुस्लिम सत्ता को फिर से प्राप्त करने के लिए यत्न करें"। (नंदा-पैन इस्लामिज्म, इम्पीरियलिज्म एण्ड नेशनलिज़्म; पृ. 117)।

3. मौलाना मौदूदी का कहना है कि " मुसलमान भी भारत की स्वतंत्रता के उतने ही इच्छुक थे जितने कि दूसरे लोग किन्तु वह इसको, एक साधन, एक पड़ाव, मानते थे, ध्येय (मंजिल) नहीं। उनका ध्येय एक ऐसे राज्य की स्थापना था जिसमें मुसलमानों को विदेश अथवा अपने ही देश के गैर-मुस्लिमों की प्रजा बन कर न रहना पड़े। शासन दारुल-इस्लाम (शरीय शासन) की कल्पना के जितना भी सम्भव हो, निकट हो। **मुस्लिम, भारत सरकार में, भारतीय होने के नाते नहीं, मुस्लिम की हैसियत से भागीदार हों। शर्त यह है कि उन्हें अपने बच्चों की शिक्षा को स्वयं करने का अधिकार हो। इस्लामी धार्मिक और सामाजिक नियमों के पालन करने की स्वतंत्रता हो और गैर-इस्लामी (हिन्दू) रीति रिवाजों का उन्मूलन करने की भी। उनसे अपने सहधर्मियों के विरुद्ध युद्ध करने को न कहा जाए**" (डा. तारा चन्द हिस्ट्री आफ दी फ्रीडम मूवमेंट, खंड 3; पृ. 287)।
4. पाकिस्तान बनने के बाद भी मौलाना हुसैन अहमद मदनी ने कहा "हिन्दुस्तान, जब से इकतदारे इस्लाम (इस्लामी शासन) खत्म हुआए तब से ही दारुल हर्ब है"। "जब सल्तनत हासिल न हो अहाद (मुसलमानों) का फरीज़ा सिर्फ यह होगा कि अपनी ताकत के अनुसार इसकी जद्दाजहद करें कि इस्लामी हुकूमन कायम हो (पुरुषोत्तम, पृ. 54 से उद्धृत)।
5. मदनी पुनः कहते हैं "यदि वर्तमान में इतनी शक्ति नहीं कि एक सच्चा इस्लामी राज्य स्थापित किया जा सके, तब शरियत के अनुसार दो बुराइयों में से एक छोटी बुराई को स्वीकार करना जरुरी है क्योंकि जिहाद का कर्तव्यपालन करने में और उसके अनुसरण में हथियार या युद्ध की पद्धति का कोई प्रतिबन्ध नहीं है बल्कि यह आवश्यक और उचित है कि चाहे जो भी हथियार या पद्धति हो, जो शत्रु की शक्ति या प्रतिष्ठा को नुकसान पहुंचा सके, उसका प्रयोग किया जाये (मुत्ताहिदाह कौमियत और इस्लाम, पृ. 72)।
6. इसी प्रकार जमीयत-इ-उलेमा के महामंत्री और भूतपूर्व कांग्रेस सांसद मौ. हिफाजुर्रहमान लिखते हैं " सैयद अहमद बरेलवी से लेकर मौ. महमूद

ऊलहसन तक के उलेमाओं के **सभी आन्दोलनों का ध्येय भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना था और उन्होंने परिस्थितिवश ही गैर-मुसलमानों या कांग्रेस के साथ सहयोग किया था। परन्तु इस सम्मिलित संघर्ष में उन्होंने अपने वास्तविक ध्येय को यथावत् रखा और उसे कभी नज़र-अन्दाज नहीं किया** (मौहम्मद सज्जाद-हकूमत-इ-इलाही की प्रस्तावना से)।

उपरोक्त उद्धरणों से इस्लाम एवं भारतीय मुसलमानों के धार्मिक व राजनैतिक नेताओं की मानसिकता सुस्पष्ट होती है कि वे भारत को इस्लामी राज्य बनाना चाहते हैं, भले ही कुछ समय के लिए मुख्य उद्देश्य की पूर्ति के लिए कांग्रेस व अन्य पार्टियों से समझौता करना पड़े। इसीलिए अगस्त 1947 में पाकिस्तान बनने के बाद दूसरी रणनीति बनाई गई और मुसलमान सभी भारतीय पार्टियों में घुस गए और लगातार भारत के इस्लामीकरण में सक्रिय हो गए हैं और कांग्रेस ने लम्बे काल तक सत्ता में बने रहने के लिए मुसलमानों की अंधाधुध तुष्टीकरण करना प्रारम्भ कर दिया। (देखिए हमारी पुस्तक कांग्रेस राज में मुस्लिम तुष्टीकरण और हिन्दू)।

हिन्दू धर्म की स्थिति

आज हिन्दू अल्पसंख्यक तुष्टीकरण का शिकार है और वह विनाश के कगार पर खड़ा है। इस तुष्टीकरण के अंग हैं : हिन्दू विरोधी संविधान, विकृत सेक्यूलरिज़्म, समान आचार संहिता का विरोध, सरकारी खर्चे पर हज यात्रा, इमामों को वेतन, सरकारी खर्चे पर इस्लामी शिक्षा, उर्दू को बढ़ावा व उर्दू विश्वविद्यालय की स्थापना, सरकारी नौकरियों एवं रोजगार में अल्पसंख्यकों को वरीयता, उन्हें व्यवसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण की विशेष सुविधाऐं, बंगलादेशी मुसलमानों को योजनाबद्ध ढंग से बसाना, उन्हें राशन कार्ड बनवा कर देना, मस्लिम-बहुल कश्मीर घाटी से हिन्दुओं की हत्या या पलायन की उपेक्षा एवं हिन्दुओं के धर्मान्तरण की अनदेखी करना आदि। इन्हीं कारणों से भारत में हिन्दू आज उपेक्षित व द्वितीय श्रेणी का नागरिक बनकर रह गया है।

परिणामस्वरूप आज की राजनीति भारत के इस्लामीकरण को बढ़ावा दे रही है। गत सौ वर्षो में हिन्दू जनसंख्या का प्रतिशत लगातार घटता जा रहा है एवं ईसाई व मुसलमानों का बढ़ रहा है (तालिका 1-2)। जिसका मुख्य कारण है, हिन्दुओं का धर्मान्तरण, हिन्दू कन्याओं का योजनाबद्ध ढंग से अपहरण, विदेशी (पाकिस्तानी व

तालिका 1 पिछले सौ वर्षों में धर्म के आधार पर भारत की जनसंख्या (प्रतिशत-जनगणना रिपोर्टों के आधार पर)

धर्म	1881	1891	1901	1911	1921	1931	1941*	1951**	1961	1971	1981	1991	1996***
हिन्दू	75.09	74.24	72.87	71.68	70.73	70.67	69.46	84.98	83.51	82.72	83.09	82.41	82.02
मुसलमान	19.97	20.41	21.88	22.39	23.23	23.49	24.28	9.91	10.70	11.21	10.88	11.67	12.13
ईसाई	0.71	0.77	0.98	1.21	1.47	1.77	1.91	2.35	2.44	2.60	2.45	2.32	2.24
जैन	0.49	0.51	0.47	0.41	0.39	0.37	0.37	0.45	0.46	0.47	0.48	0.41	0.40
सिख	0.74	0.68	0.77	1.00	1.06	1.28	1.46	1.74	1.79	1.89	1.91	1.99	1.99
बौद्ध	0.07	0.09	0.10	0.11	0.12	0.13	0.12	0.05	0.73	0.70	0.70	0.77	0.78
अन्य	2.83	3.30	2.93	3.20	3.00	3.39	2.40	1.52	1.37	1.41	0.49	0.43	0.45

* अखंड भारत में ** विभाजित भारत में *** अनुमानित 1991 में वृद्धि के आधार पर

तालिका 2 हिन्दुओं की प्रान्त की औसत प्रतिशत वृद्धि की अपेक्षा मुसलमानों और ईसाइयों की जनसंख्या में प्रतिशत वृद्धि (1981 से 1991 तक)

प्रान्त	(% हिन्दू)	मुसलमान (% वृद्धि)	ईसाई (% वृद्धि)	प्रान्त	(% हिन्दू)	मुसलमान (% वृद्धि)	ईसाई (% वृद्धि)
भारत	82.41	143.8	74.2	उड़िया	94.7	192.7	202.4
आन्ध्र प्रदेश	89.1	123.9	–	पंजाब	34.5	333.2	170.9
अरुणाचल	37.0	184.1	308.6	राजस्थान	89.1	147.6	75.8
बिहार	82.4	129.8	61.6	सिक्किम	68.4	61.3	298.0
गोआ	64.5	287.6	62.6	तमिलनाडु	88.7	139.5	89.9
गुजरात	89.5	113.9	175.0	त्रिपुरा	86.5	139.4	289.2
हरियाणा	89.2	168.8	104.9	उत्तर प्रदेश	81.7	158.1	99.0
हिमाचल प्रदेश	95.9	133.8	58.0	पश्चिमी बंगाल	77.8	174.9	94.5
कर्नाटक	85.5	124.4	538.0	*केन्द्रशासित क्षेत्र*			
केरल	57.3	202.0	58.7	अंडमान–निकोबार	67.5	57.4	70.5
मध्यप्रदेश	92.8	117.2	79.7	चंडीगढ़	75.8	212.6	28.9
महाराष्ट्र	81.1	124.2	44.5	दादरा नगर हवेली	95.5	218.0	9.9
मनीपुर	57.7	142.4	201.0	डामनड्यू	87.8	92.3	82.1
मेघालय	14.7	597.5	779.5	दिल्ली	83.7	164.1	67.8
मिजोरम	5.1	464.4	188.2	लक्षद्वीप	4.5	92.8	417.8
नागालैंड	10.1	743.2	697.1	पांडीचेरी	86.2	127.8	49.0

जम्मू–कश्मीर और आसाम के 1991 के आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं तथा मिजोरम में कुल हिन्दुओं की जनसंख्या घटने के कारण हिन्दू की वृद्धि भारत के औसत के आधार पर है। समस्त आंकड़े सरकार की जनसंख्या रिपोर्ट 1995 के आधार पर हैं।

बंगलादेशी) मुसलमानों का 1950 से ही पूर्व योजनानुसार भारत के विभिन्न भागों में घुसपैठ आदि। क्या किसी स्वतंत्र या इस्लामी राज्य में इस प्रकार विदेशियों को बसाना वैध है? अनेक इस्लामी राज्यों में तो अपने ही देशवासियों को बाहर जाने के लिए अपनी ही सरकार से 'इकामा' या आज्ञा लेनी पड़ती है। क्या कोई इस्लामी देश स्वदेश के मुसलमानों को धर्मान्तरण की आज्ञा देता है? कभी नहीं। तो भारत में ही हिन्दुओं के धर्मान्तरण की उपेक्षा क्यों की जाती है?

यह बताना यहाँ उचित होगा कि विश्व में मुसलमानों की कुल संख्या में धर्मान्तरित हिन्दुओं का अंश ही मुख्य है। इसमें इन्डोनेशिया, मलेशिया, पाकिस्तान, बंगलादेश व भारत के लगभग 52 करोड़ मुसलमानों के पूर्वज हिन्दू थे और भारत व बंगलादेश के शेष हिन्दुओं पर उनका निशाना है। बंगलादेश से दो करोड़ से अधिक मुसलमान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बस गए हैं जिसमें आसाम के 23 जिलों में से पांच में मुसलमानों की संख्या 56 से 71%, छः में 29 से 49% और पांच में 20 से 29% हो गई है। भारत सरकार ने भी माना है कि **"भारत में बंगलादेशी राष्ट्रिकों की निरन्तर घुसपैठ के लिए धार्मिक और आर्थिक कारणों सहित अनेक कारण हैं"** (पाञ्चजन्य 3.9.95)।

मुस्लिम बहुल कश्मीर घाटी में अपनी ही सरकार ने अपने ही देश के पांच लाख हिन्दू नागरिकों के पलायन पर आंखें मीच रखी हैं। 1948 में 10 प्रतिशत से अधिक मुस्लिम आबादी वाले 40 जिले थे जो अब बढ़कर 123 हो गए हैं। निःसंदेह 1947 से आज तक की सरकारों में हिन्दू उपेक्षित, अपमानित और असुरक्षित रहा है सिर्फ इसलिए कि मुसलमान कहीं नाराज़ न हो जाएं। वोट बैंक के लालची, अल्पकालीन सत्ता के भूखे, अदूरदर्शी देशद्रोही नेता जो कुछ भी अनर्थ करें, थोड़ा है।

यदि इस्लाम, ईसाइयत और हिन्दू धर्म की दृष्टि से विचार करते हुए इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भारत में पहले इस्लाम और ईसाइयत मिलकर हिन्दू और हिन्दू धर्म को समाप्त करना चाहते हैं और फिर सम्भावना है कि वे एक दूसरे को समाप्त करने के लिए संघर्ष करें। इसमें कौन जीतेगा वह इस बात पर निर्भर करेगा कि इस्लामी और ईसाइयत की अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियाँ क्या रणनीति अपनाती हैं। परन्तु फिर भी मुसलमानों का संख्याबल ईसाइयत को भारी पड़ेगा। इसके अलावा इस सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि हिन्दू में प्रचण्ड राष्ट्रीय चेतना जागृत हो जाए और परावर्तन यानी शुद्धि का युग प्रारम्भ हो जाए क्योंकि जैसे-जैसे शिक्षा बढ़ रही है। आत्म चेतना-सजग मुसलमान युवक युवतियां इस्लाम में घुटन महसूस रहे हैं। परन्तु यह तभी होगा जब आज हिन्दू वर्तमान राजनैतिक व धार्मिक चुनौतियों को अपने जीवन-मरण का प्रश्न बना लें। क्योंकि हिन्दू धर्म

शास्त्रों एवं वेदों की आध्यात्मिक एक राष्ट्रभक्ति की प्रेरणा अत्यन्त ओजस्वी, व्यावहारिक एवं संगठनात्मक है। मगर इससे पहले हमें थोथे आत्मघाती विकृत सेक्यूलरिज़्म के भस्मासुर को समाप्त करना होगा। सामाजिक बुराइयों को समाप्त करना होगा। धर्म के बोझिल व असंगत कर्मकाण्ड को सात्विक स्वरुप देना होगा, धार्मिक शिक्षा को प्रेरणादायक, विकासवादी और मानवीय मूल्यों के आधार पर सुग्राह्य बनाना होगा।

इस दृष्टि से हमने अपने एक प्रकाशन "हिन्दू क्या करें" में हिन्दुओं के लिए व्यापक कार्यक्रम प्रस्तावित किया है जिसका आधार महाभारत के ये वचन हैं :-

सर्वे लोकाः राजधर्मे प्रविष्ठाः। सर्वेधर्मा राजधर्माः प्रधानाः।।

यानी "सर्व लौकिक कार्यों में राज धर्म प्रभावकारी है इसलिए अपने धर्म में राज धर्म या राजनीति को प्रधानता दो"। हिन्दू धर्म केवल ईश्वर भक्ति, सत्संग एवं कर्म काण्ड नहीं है, बल्कि आत्मरक्षा, स्वतंत्रता और स्वाभिमानपूर्ण जीवन के लिए हिन्दू राज्य शक्ति भी अत्यन्त आवश्यक है। अतः हिन्दू राज्य शक्ति इकट्ठी करें। ममतावादी-समतावादी समाज की पुनर्रचना करें और राष्ट्र रक्षा के लिए प्रचण्ड राष्ट्रभक्ति जागृत करें। आज की मांग है -

शास्त्र और शस्त्र उठाओ – अधर्मियों को मार भगाओ।

बाइबिल व ईसाइयत के बारे में पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति

1. मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग, जो यह विश्वास करते हैं कि हम सब पापी हैं यदि हम ईसाई मत में विश्वास नहीं रखते हैं, तो ऐसे लोग अधिकांशतः पापी रहे हैं।– **बर्ट्रेन्ड रसैल**
2. तुम्हारे ईसाई मत का आधार अन्याय है। पापी के लिए पवित्र, निष्कलंक एवं निष्पाप ईश्वर के पुत्र का बलिदान किया गया।–**लॉर्ड बायरन**
3. कोई भी निरर्थक शब्द लिख सकता है, लेकिन कोई भी इस पर विश्वास नहीं कर सकता है जो कि निरर्थक है। . . . . कोई विश्वास नहीं कर सकता कि ईश्वर, एक ही समय में, एक और तीन, दोनों है।
   – लिओ टॉलस्टाय
4. वह दिन आएगा जब कि जीज़स की पौराणिक गाथाओं की उत्पत्ति, ईश्वर का पिता के रुप में एक कुमारी के गर्भ में आना, एक ऐसी गप्प समझी जाएगी जैसा कि जुपिटर देवता के मस्तिष्क में बुद्धि की देवी-मिनर्वा का आना। – **टामस जैफ़रसन**
5. आज रोमन कैथोलिक चर्च दुनियां में सबसे बड़ी बुराई है।
   – एच० जी० वैल्स
6. मैं ईसाइयत को एक सबसे बड़ा अभिशाप, विशाल एवं गहनतम विकृति और प्रतिशोध की अति महती प्रवृति मानता हूँ जिसके लिए कोई भी साधन कितना ही जहरीला, कितना भी गुप्त और कितना ही निम्न श्रेणी का क्यों न हो, बड़ा नहीं है। **– नीत्ज़शे**
7. ईसाइयत का यह त्रित्ववादीय गणित एक अकल्पनीय अनर्गल गप्प है कि तीनों एक हैं और एक तीनों है। **– टामस जैफरसन**
8. बाइबिल, बर्बर लोगों के लिए, बर्बर युग में लिखी गई, एक बर्बर किताब है।
   – डीन फरार
9. वास्तव में बाइबिल लोगों को सताने वाली, गुलाम बनाने वाली और भ्रष्ट कारक है। **– कर्नल राबर्ट जी. इंगरसौल**
10. ऐसा कहा गया है कि बाइबिल द्वारा कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है; लकिन इससे पहले कि बाइबिल द्वारा सिद्ध की गई कोई बात मानी जाए, पहले स्वयं बाइबिल की सचाई को ही परखा जाए। **– टामस पैन**